

**Text Dark And Light
Within The Book Only**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182391

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—831—5-8-74—15,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No.

Accession No.

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

८४३.१

सामाजिक उपन्यास

रतिनाथ की चाची

लेखक
नागार्जुन

किताब महल इलाहाबाद

२३५, होर्नबी रोड, फाट, बम्बई.

प्रथम संस्करण १९४८

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद
मुद्रक—बी० एल० वारश्नी, वारश्नी प्रेस, कटरा, इलाहाबाद

चैत का महीना था और शाम का वक्त । बीच आँगन में टोला-पड़ोस की औरते जमा थीं । सभी किसी न किसी बातचीत में मशगूल थीं । दो-एक की गोद में बच्चा भी था । दो एक जनेऊ का धागा तैयार करने के लिए तकली लिये आई थीं । उनकी तकलियाँ किर-किर करके काँसे के कटोरों में नाच रही थीं और पूनी से खिंचकर सर-सर निकलता जा रहा था सूत ।

एक ही थी जो बेकार और चुप बैठी थी । उसके चेहरे पर विषाद की काली छाया मँडरा रही थी । वह न तकली ही कात रही थी न गोद में उसके कोई बच्चा ही था । बाकी औरते रह-रहकर उसकी ओर अजीब निगाहों से ताका करतीं ।

थोड़ी देर बाद दम्नो फूफी आ पहुँची । अदालत में मुजरिम हाजिर हो, वकील-मुख्तार गवाह सभी मौजूद हों फिर भी अगर जज ने किसी कारण से देर कर दी तो क्या होता है ? दम्नो फूफी के बिना यही हाल था इस महिला परिषद का ।

फूफी को आग्रहपूर्वक आसन पर बैठाया गया । गोरा और छुरहरा बदन, गोल-मटोल चेहरा । नन्हें-नन्हें से पतले हाँठ । गंगा-जमनी बाल । कानों में सोने के छोटे-छोटे मगर लटक रहे थे । शांती-पुरी धोती पहने हुए थीं । गले में भारीक रुद्राक्षों की माला शिवभक्ति

की सबूत थी या शौक की, कहा नहीं जा सकता। अंटी में से चाँदी की सुन्दर डिब्बिया निकालती हुई वह बोली—आज गर्मी मालूम देती है, तूफान उठा तो आम की फसल चौपट हो जाएगी। नस 'निकालकर चुटकी से नाक के पूड़ों में उसे भरते हुए फूफी ने फिर कहा—गुज्जी, बिटिया, हमारे यहाँ से जरा पंखा तो लेती आ। गुंजेसरी ने पंखा ला दिया।

इतने में रूपरानी का बच्चा रो पड़ा, जाने किधर से सबकी नज़र बचाकर एक लाल चींटा आया और इस बच्चे को काट लिया। बायें पैर का अँगूठा धरती से छू रहा था। बच्चे की चीख बढ़ती ही गई। दम्नो फूफी ने कहा—जाओ रूपरानी, लोहा छुआ दो। जलन जाती रहेगी।

अपने बच्चे को लेकर रूपरानी जब चली गई तो फूफी ने एक बार और सुँघनी सुरकी।

सभी की दृष्टि सभी का ध्यान फूफी पर केन्द्रित था। एक ही थी जो विषाद और जड़ता की प्रतिमा बनी बैठी थी। अब दम्नो फूफी ने अच्छी तरह आँख फाड़कर उस पाषाणी की ओर देखा। उसके बाद सभी को अपनी निगाह के दायरे में समेटती हुई बोली—उमानाथ की माँ कब तक चुप रहेगी? कुछ न कुछ तो इसे कहना ही पड़ेगा। समूचे गाँव में इसी बात की चर्चा है। आखिर जो होना था वह होकर ही रहा। विधना के विधान को भला हम तुम टाल सकते हैं? यह बेचारी—

इतना कहकर अपने सुन्दर और कोमल हाथ से फूफी ने उस विषादमयी प्रतिमा की ओर संकेत किया। सुननेवाली औरतों ने साँस खींचकर अपने कानों को मानो और भी साफ़ कर लिया। फूफी बोलती गई—वैद्यनाथ के मरने के बाद कितनी कठिनाई से उमानाथ को पाल-पोसकर इतना बड़ा कर पाई है, यह तुममें से बहुतों को मालूम नहीं होगा। भगवान करे, उमानाथ अपने बाप का नाम रखे।

सहानुभूति के ये शब्द सुनकर उमानाथ की माँ की आँखें छलछल्ला आईं और ऐसा लगा कि पाषाणी प्रतिमा में फिर से प्राणों की प्रतिष्ठा हो गई है। उसने कृतज्ञ आँखों से दमयन्ती (दम्मो फूफी) को देखा और सिर नीचा कर लिया। शिकार को गिरफ्त करके बाघिन को जितना संतोष होता है इस समय फूफी के भी संतोष की वही मात्रा थी। बेचारी उमानाथ की माँ को क्या पता कि इस सहानुभूति के पीछे एक डायन का निठुर अट्टहास छिपा पड़ा है, ! बेचारी को जयनाथ याद आया जो आज चार महीनों से लापता है।

फूफी ने नस* लेते हुए कहा—कोई चिन्ता नहीं, सारा इन्तज़ाम हमने कर लिया है। परसों इस समय तक यह बोभा तुम्हारे सिर से उतर चुका होगा। उमानाथ की माँ, रत्ती भर भी फिकर मत करो।

कृतज्ञता के मारे उमानाथ की माँ का मन करता था कि दमयन्ती के पैरों पर अपना सिर रख दे और सुबुक-सुबुककर कुछ देर रोये। यह चतुर बुढ़िया उस बेचारी को ममता का अवतार प्रतीत हो रही थी। वह विधवा है, अकिंचन है। उसे गर्भ रह गया है। कहीं वह मुँह दिखाने के काबिल नहीं रही। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सभी गुप चुप उमानाथ की माँ के इस महान् कलंक का मानो कीर्तन कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि दम्मो फूफी जैसी संभ्रान्त वृद्धा उसे सान्त्वना देने आई हैं तो इससे बढ़कर व्यावहारिक मानवता भला और क्या होगी ? मगर वहाँ तो बीसियों बैठी थीं, दम्मो फूफी अकेले रहतीं तब न ! उमानाथ की माँ को साहस नहीं हुआ कि फूफी के पैरों पड़ जाये, लज्जा भी निगोड़ी कैसी होती है कि उसका अंचल घोर से घोर पापी के लिए भी सुलभ है !

स्वर को अधिक से अधिक कोमल करके फूफी ने कहा—अच्छा, कौन था वह कलमुँहा उमानाथ की माँ, जिसने तुम्हें आग में यों भोंक दिया ?

इस असंभावित प्रश्न से बेचारी के रोम-रोम काँप उठे, समूचे शरीर का लहू पानी-पानी हो गया । विकराल मुँहवाली राक्षसी याद आई जिसकी कहानियाँ बचपन में अपने नाना से वह सुना करती थी । दमयन्ती का वह सौम्य रूप उमानाथ की माँ के लिए अब मिटता जा रहा था, उसकी जगह कहानी की विकरालवदना वही राक्षसी नज़र आने लगी । अभगिनी का हृदय केले के पत्ते की तरह काँपने लगा ।

तो क्या, जयनाथ का नाम वह बता देगी ? नहीं कभी नहीं । उसने कहा—पता नहीं, मैं कैसे बताऊँ ?

हूँ—दमयन्ती ने गौर से उमानाथ की माँ की ओर देखा और पंखे को बेंट से पीठ खुजलाते हुए मुसकुराना शुरू किया । फूफी की इस लम्बी मुसकान का और स्त्रियों ने हँसकर समर्थन किया । परन्तु इस मुसकान और इस हँसी के पीछे उमानाथ की माँ को उल्लता-कूदता काला पहाड़ स्पष्ट दिखाई पड़ा जो कि आहिस्ते-आहिस्ते उसी की ओर बढ़ा आ रहा था । ये लोग मानेंगे नहीं, कुछ न कुछ कहना ही पड़ेगा । क्या कहा जाय, क्या नहीं—वह बेचारी देर तक इसी गुन-धुन में पड़ी रही ।

फूफी ने बदले हुए स्वर में पूछा—तो तुम इस बारे में कुछ नहीं जानती ?

उमानाथ की माँ नाखून से नाखून खोंट रही थी । आँगन के एक कोने में रतिनाथ बैठा था । महज ग्यारह वर्ष की उम्र होने के कारण ही वह स्त्रियों के इस गुप्त अधिवेशन में शामिल हो सका था । इस सवाल से उस लड़के का दिल धड़क रहा था कि कहीं उसी के बाप का नाम न चाची के मुँह से निकल आवे ! चार मास से रत्ती का बाप—जयनाथ लापता है ।

इस मातृहीन बालक का अपनी चाची के प्रति बहुत ही गहरा स्नेह था। चाची भी रत्ती को खूब मानती थी। पिछले चार मास में यह स्नेह और भी घना हो उठा था। चारों ओर से लांछित चारों ओर से तिरस्कृत होकर उमानाथ की माँ जब भूखे पेट ही सो जाना चाहती तो रतिनाथ सत्याग्रह कर देता—ऐसी क्या बात है चाची कि तुमने खाना-पीना छोड़ रखा है? अच्छा, नहीं खाना है न खाओ। मगर कल मैं भी नहीं खाऊँगा, नहीं खाऊँगा, नहीं खाऊँगा। इतना कहकर वह चाची की पीठ से सटकर बैठ जाता और उसके रूखे बालों में अपनी नन्हीं नन्हीं अँगुलियाँ उलझाने लगता। चाची की देह सिहर उठती और जयनाथ याद आ जाते। तब वह उठ बैठती और दो-चार कौर भात खा लेती। एक दिन पड़ोस की एक लड़की ने रतिनाथ से कहा था—तेरी चाची को, रत्ती, बच्चा होने वाला है; उसने कसकर छोकरी को एक तमाचा लगा दिया...वेचारे को कुछ पता ही नहीं कि आखिर बात क्या है। एक दिन दूर की किसी भाभी ने खुलासा कहा, लाला, तुम्हारी चाची की अगर दूसरी शादी हो गई होती तो ठीक था। इस पर रतिनाथ ने उस भाभी को फटकारते हुए बतलाया था कि पंडित की लड़की होकर तुम ऐसी बातें करती हो! दूसरी तीसरी शादी क्या कभी किसी विधवा या सधवा ब्राह्मणी ने की है?

अच्छा भई—फूफी ने उठते हुए कहा—अँधेरा हो गया, मुझे तो शिवजी के दर्शन करने नित्य इस समय भी मन्दिर जाना होता है। तुम्हारी मर्जी! लेकिन पाँच साल की बच्ची भी इतना बता देती है कि आँखमिचौनी के वक्त उसकी पीठ थपथपाने वाला आखिर कौन रहा होगा और एक हो तुम! ओह, कितनी भोली...अबके फूफी खिलखिलाकर हँस पड़ी, औरों ने भी साथ दिया। यह उन्मुक्त हास उमानाथ को माँ को असह्य हो उठा। मनमें आया कि वह भी कसकर चिकोटियाँ काटे। दमयंती के बालवैधव्य की रँगिलियों का उसे सारा हाल मालूम था। मगर नहीं, रत्ती की चाची ने अपने को सँभाला!

और उठकर कहा—मैं और कुछ नहीं जानती। वह भादों का महीना था। अमावस की रात थी। एक घनी और अंधेरी छाया मेरे बिस्तरे की तरफ बढ़ आई। उसके बाद क्या हुआ, इस बात का होश अपने को नहीं रहा...

फूफी ने इस पर कुछ नहीं कहा। परन्तु रामपुरवाली चाची ने आंगन से निकलते समय हलकी आवाज में कहा था—होश कैसे हता? मौज मारने की घड़ियों में किसी को भला कैसे होश रहेगा? बला से, अब पेट कोहड़ा हो गया है तो होने दीजिए।

—२—

उस रात चूल्हा नहीं जला।

चाची जाकर बिस्तरे पर लेट गई। बिस्तरे क्या था, खजूर के पत्तों की चटाई थी। बीच घर में वहीं बिछाकर चाची लेट गई, न तकिया लिया न सुजनी। दाईं बांह पर सिर रखकर वह पड़ रही और आँवों की रोशनी को घने अंधकार में भटकने के लिए छोड़ दिया जैसे थका और भूखा चरवाहा लापवाह होकर अपनी गायों को जंगल में छोड़ देता है, वे लौट भी आना चाहती हैं तो मार डंडा से मार डंडा से वह उन्हें फिर फिर जंगल की ओर खदेड़ देता है। बस्ती नज़दीक नहीं होने से किसी पेड़ के नीचे वह भी बांह की तकिया बनाकर करवट लेट जाता है...

रतिनाथ भी जाकर संदूक पर पड़ रहा। विपत्ति के अथाह समुद्र में गोते खा रही इस चाची के लिए बेचारे ने उस रात कितने आँसू बहाए, यह रहस्य भगवान ही जानते हैं। दिन का भात हांडी में था, पत्थर के बड़े कटोरे में दाल थी। एक दूसरी पथरौटी में ज़रा-सा बैंगन का चोखा रखा हुआ था। पर किसी ने हाथ तक नहीं लगाया। रक्ती भूखा ज़रूर था लेकिन उसकी भूख-प्यास हवा हो गई जब कि

टोल-पड़ोस की महिलाओं का दल मुस्कुराता और आँखें मटकाता हुआ शाम को रत्ती के आँगन से चला गया। चाची बुत बनी वहीं खड़ी रही, उसकी आँखों से आँसू के चार बड़े-बड़े बूँद ढुलक पड़े थे। समाज व्यक्ति के प्रति इतना निटुर इतना नृशंस हो सकता है, उस अबोध को अपनी छोटी-सी आयु में आज यह सत्य पहली बार भासित हुआ था।

परन्तु दुपहर रात को किसी ने रत्ती के मुँह में दस-पाँच कौर अवश्य डाल दिये थे, और कौन होगा ? चाची ही होगी।

हाँ, चाची ही थी। उसी ने नींद में विभोर रतिनाथ को उठाकर दाल-भात और बैगन का चोखा खिला दिया। रत्ती बराबर आँखें मूँदे ही रहा। खिला-पिलाकर कुल्ली कराकर चाची ने उसे अपने पास सुला लिया। खुद उसने कुछ नहीं खाया। बचा भात बाहर डाल दिया था।

उस रात चाची को नींद नहीं आई। जिसके माथे पर विपत्ति का इतना बड़ा पहाड़ हो वह भला कैसे सोये ? भादों, आसिन, कातिक, अग्रहन, पूस, माघ, फागुन, और यह चैत—आठवाँ महीना चल रहा था। पेट में बच्चा उधम मचाने लगा था। चाची को ख्याल आया जयनाथ का चेहरा और फिर उसने सोये हुए रत्ती का मुँह चूम लिया। उमानाथ की माँ जानती थी कि जयनाथ देवघर था और आजकल काशी में है। बेचारी ने कई बार चिन्ही लिखवाना चाहा, मगर किससे लिखवाती ? जयनाथ वादा कर गए थे कि दस दिन में ही मैं बाबा (वैद्यनाथ) को जल ढालकर आ रहा हूँ। पूस चढ़ते गए और यह चैत भी बारह दिन बीत गया। चाची को सारी पुरुषजाति पर घृणा हो गई। इस मुसीबत का सामना जिसे करना चाहिए वह कहीं यों बाबा वैजनाथ और काशी विश्वनाथ के इर्द-गिर्द गाल बजाता फिरे ? छिः ! ऐसा था तो मुझे भी साथ ले लिया होता। हे भगवान ! पानी में डूब मरने के अतिरिक्त क्या और कोई उपाय नहीं है ? सुनती हूँ,

लहेरिया सराय के सरकारी अस्पताल की डाक्टरनी गर्भ गिराने में बहुत कुशल है...मगर वहाँ तक मैं पहुँचूँगी कैसे ?

मुसीबत की उस घड़ी में एकाएक चाची को अपनी माँ याद आई। उसने तय किया कि आज तो नहीं, कल रातों रात वह तरकुलवा चली जाएगी। वहाँ, गाँव में ही, कई चमाइनें हैं। डाँट फटकार गंजन-फजीहत के बावजूद भी माँ आखिर माँ ही होगी। लड़की का कवच बनकर तमाम मुसीबतों को वह अपने ऊपर ले लेगी, इसमें भी क्या कुछ शक है ?

इस निश्चय से चाची को राहत मिली और रात्रिशेष में बेचारी की बोझिल पलकें ज़रा भपक गईं।

रतिनाथ की आँख सबेरे ही खुली। चाची को दूसरे दिन की भाँति आज उसने नहीं जगाया। आँख मलते-मलते वह चाची के घर के पिछवाड़े में गया। पेशाब करते वक्त उसकी निगाह धिवही पर पड़ी। आम के इस बड़े पेड़ को वह बहुत प्यार करता था। इसके आम गोल-गोल होते थे। पकने पर मुँह पीला और बदन लाल हो जाता था। स्वाद घी जैसा। रस गाढ़ा और गुठली छोटी होती थी। इस आम का यह नाम दादी का रखा हुआ था। पेड़ फलता भी खूब था। बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस हजार तो सिर्फ पकने पर निकलते। आँधी और तूफान में हजारों कच्ची अंबियाँ गिरतीं सो अलग। वह भी बेकार नहीं जातीं, अचार और सूखी खटाई लोग साल भर खाते। पकने पर धिवही का पेड़ कल्पवृक्ष सा मनोहर लगता। गाँव में ऐसा कौन होगा जिसने धिवही के दस-पाँच आम नहीं खाए हों। उसका अमावट ये लोग साल दो साल तक खाते। इस बार भी धिवही में फल खूब आए थे। रतिनाथ ने देखा, पचासों टिकोरे गिरे पड़े हैं। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा, चटनी के लिए यह काफी हैं।

वह टिकोरे इकट्ठे करने लगा। चुनने को कुछ रह गए थे कि चाची ने आवाज़ दी—रत्ती, ओ रत्ती ! कहाँ गया ?

यह रहा चाची, टिकोरे चुन रहा हूँ—रतिनाथ ने ज़ोर से जवाब दिया तब तक चाची भी वहाँ पहुँच गई। नजदीक आकर रत्ती की टुड्डी पर हाथ फेरती हुई वह बोली, तुझे क्या है पागल ? तू क्यों इतना दुबला हो गया है ?

लड़के ने नज़र नीची कर ली। ज़रा देर बाद कहा—चाची, आज मैं पाठशाला अवश्य जाऊँगा। रसोई तो भला तुम जल्दी कर लो, चटनी मैं खुद ही कर लूँगा।

चुने हुए टिकोरे लेकर चाची आँगन चली आई। चौका-बर्तन करने के बाद उसने चूल्हा जलाया। खानदानी खवास की बुढ़िया औरत आज पानी भरने नहीं आई, घड़े रीते पड़े थे। रतिनाथ ने छोटी बाल्टी में पोखर का पानी ला-लाकर उन्हें भर दिया। चाची समझ गई कि दमयंती का अनुशासन उसके खिलाफ शुरू हो गया आज से। अब इस आँगन में न धोबिन आएगी न नाइन, न डोमिन न चमाइन। ब्राह्मणी की तो भला बात ही कौन कहे। पुरानी दियासलाई में अभी चार-छः तीलियाँ थीं, एक तीली घिसकर चाची ने चूल्हा जला लिया था। नहीं तो गाँव-गाँव में आग एक घर से माँगकर दूसरा घरवाला ले जाता है, दूसरे से तीसरा। यां दियासलाई का काम ही नहीं पड़ता। फिर भी लोग सलाई की दस-पाँच तीलियाँ बचाकर रखते अवश्य हैं। यह नहीं कि रतिनाथ किसी के यहाँ से आग ला नहीं सकता था। ला सकता था, अगर किसी ने चाची के सम्बन्ध में कुछ अनाप-शनाप उसे सुना दिया तो लड़के के दिल को कितनी चोट लगेगी ! यही सब सोचकर चाची ने रत्ती को कहीं आग लाने नहीं जाने दिया।

रत्ती को चाची का यह रुख पसन्द नहीं आया। वह सोचता, जो एक सुनाएगा हम उसे दश सुना देंगे। जो आग नहीं देगी उसके चूल्हे पर पेशाब कर दूँगा।

खैर, थोड़ा पानी से भी काम चल गया। चाची ने सिर्फ चार-छः लोटा पानी नहाने में खर्च किया, बाकी रसोई में। पीने के लिए एक बाल्टी रत्ती कुएँ से स्वयं ले आया भरकर। भात तैयार हो गया तब जाकर वह पोखर में नहा आया।

सौ साल पहले पंडित नीलमणि ने यह पोखर खुदवाया था। वह रत्ती के दादा के दादा थे। अपने दालान के बिलकुल करीब आप छोटा-सा पोखर खुदवा गए। इस पोखर के तीन भिंडों पर अब उपाध्याय घराने की बढ़ती आबादी छा गई थी। केवल पूरब वाला भिंडा बच रहा था। पास-पड़ोस के मर्द आकर उसी ओर के घाटपर नहाते।

आज शालिग्राम की पूजा में रतिनाथ का मन लगा नहीं। सराइयाँ तीन थीं, देवता दो ही थे—शालिग्राम और नर्मदेश्वर। तबि की सराई शालिग्राम के लिए, पीतलवाली नर्मदेश्वर के लिए। तीसरी भी पीतल की ही थी। वह पंच देवता के उद्देश्य से थी। चंदन रगड़कर उसने अच्छत भिगोए। “ओं सहस्रशीर्षा.....” आदि मन्त्र पढ़कर शंख से शालिग्राम पर जल ढारा, फिर नर्मदेश्वर पर। फिर अनमने भाव से चंदन अच्छत फूल वगैरह चढ़ाकर रत्ती ने पूजा खतम की। उधर थाली में भात-दाल परोसा जा चुका था।

थोड़ा सा उसने खाया होगा कि तब तक चाची ने चटनी भी पीस ली। भुना हुआ जीरा भी दिया था उसमें। रतिनाथ ने चटनी का स्वाद ले-लेकर खूब खाया। खाते-खाते उसे चाची ने कहा—बेटा, पाँच-छै रोज तुझे अकेला ही रहना पड़ेगा।

और तुम कहाँ रहोगी?—उठते हुए कौर को रोककर रतिनाथ ने आँखों से ही सवाल किया। तरकुलवा जाऊँगी, किसी से कहना मत—चाची बोली।

उसने फिर कहा—रात को पड़ोस के आँगन में सो जाना। चावल, दाल, लकड़ी, धनिया, हलदी, नमक, तेल सामान सब मौजूद है।

खुद पकाकर खुद खा लेना । पाँच ही छः रोज की बात है; उसके बाद तो मैं आ ही जाऊँगी ।

रत्ती खाना खतम करते-करते बोला—मैं भी न साथ चलूँ ?

नहीं—चाची ने कहा—बात ऐसी आ पड़ी है कि अकेली ही जाऊँ, यही अच्छा रहेगा ।

रतिनाथ ने चुप रह कर चाची की बात का औचित्य मंजूर कर लिया । अब वह खाना खा चुका था । हाथ-मुँह धो आया । खाकर मुखशुद्धि के तौर पर सुपारी का एक छोटा-सा टुकड़ा चबाना उसके अभ्यास में शामिल हो गया था । सुपारी का टुकड़ा थमाते हुए चाची ने आले की ओर इशारा किया और कहा—यहाँ आठ-दश सुपारी रख जाऊँगी, सरौता भी रहेगा ।

तब तक दिन काफी उठ आया था । रत्ती पाठशाला जा चुका था । चाची अपनी चिन्ता की धारा को समकूल रखने के लिए तकली लेकर बैठी । खाना वह देर से खायेगी ।

बीच घर में बैठकर वह तकली कातने लगी किर' किर' किर' । मिथिला की कुलीन ब्राह्मणियों के जीवन में इस तकली का बहुत बड़ा स्थान रहा है । कुटीरशिल्प का यह मधुर प्रतीक अब तो उठता जा रहा है फिर भी जनेऊ के लिए तकली से निकले इन बारीक सूतों का आवश्यकता अनिवार्य समझी जाती है । फुर्सत का वक्त स्त्रियाँ तकली के सहारे बहुत आसानी से काट लेती हैं । आठ-दश वर्ष की उमर से लेकर जीवन पर्यन्त तकली का और उनका साथ रहता है । कहते हैं, ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के शासन से पहले घर-घर तकली चलती थी । तकली के ये सुन्दर और महीन सूत मलमल बुनने के काम आते । परन्तु अब तो यह वस्तु ब्राह्मणों के ही घरों में रह गई और इन सूक्ष्म और मनोहर सूतों का उपयोग सिर्फ जनेऊ तक सीमित रह गया है । हाँ तो तकली की मृदु मधुर ध्वनि में एकरस होकर चाची सोचने लगी—इस समय अगर जयनाथ होते...अगर जयनाथ होते तो उन्हें

कुछ न कुछ प्रतीकार अवश्य करना पड़ता । यह गरीबी और इतनी असहाय अवस्था । विपदाओं का यह महाजाल । कौन मुझे उबारेगा ? कुछ भी हो, मर्द फिर मर्द ही है ।

चाची को एक-एककर पुरानी बातें याद आने लगीं—सुखी माँ वाप । भरा पूरा बचपन । कुलीन परन्तु दरिद्र से विवाह । रोगी पति । पुन लगा हुआ दाम्पत्य । लड़का, उमानाथ । लड़की, प्रतिभामा । वैधव्य । सुदूर दक्षिण (भागलपूर) में लड़की का बेचना । ऋण से छुटकारा...ओह ! उमानाथ जब मुनेगा कि उसकी विधवा माँ गर्भवती हो गई थी तो...

उमानाथ की उम्र पन्द्रह साल की थी । वह जिद्दी, गुस्सैल और पढ़ने में मंद था । प्रतिभामा सत्रह साल की थी, उसे समुराल गये तीन चार साल होने आ रहे थे । कुलीनता की दृष्टि से बहुत ही नीच, मूर्ख और चालीस साल के एक अर्धेड़ ब्राह्मण ने सात सौ नक़द गिनकर उससे शादी की । छ महोने के बाद ही गौना कराकर ले गया और तब से प्रतिभामा फिर शुभंकरपुर की इस भूमि पर पैर नहीं रख पाई—

इतने में किसी के पैर का आहट पाकर चाची का ध्यान भंग हुआ । उसकी बोटी-बोटी काँपने लगी—हे भगवान् ! यह कौन आ रहा है...कल किसी ने कहा था कि थाने में भी इस बात की खबर हो गई है ।

उसका दिल धड़कने लगा । मुसीबत के इन दिनों में किधर से भी वज्र पात हो सकता है । कैसी भी अनहोनी हो सकती है । चाची को टोल-पड़ोस की एक-एक औरत दमयंती मालूम दे रही थी । हवा से उड़ा हुआ एक-एक तिनका खतरे से भरा मालूम देता था ।

आहट बिल्कुल करीब आ गया । चाची ने अपने को और कड़ा कर लिया—कोई भी हो, घबड़ाना नहीं चाहिए । बदनामी तो फैल ही गई अब और इससे अधिक क्या होगा ? दरोगा फाँसी तो देगा नहीं, हाँ पहरा जरूर बैठा दे सकता है । सरकार के कानून में गर्भ गिराना

नाजायज़ है; तो क्या सोचकर अंग्रेज बहादुर ने यह कानून बनाया होगा कि कोई भी विधवा भ्रूणहत्या नहीं कर सकती....चाची अब भी उसी रफ़ार से तकली कात रही थी। पूनी पर पूनी ख़तम होती गई मगर सोचने का धागा अपने छोर पर नहीं पहुँचा।

चाची के सामने जयनाथ खड़े थे। दाढ़ी बढ़ी हुई थी, चेहरा ख़िला हुआ। चाची की उँगली रुक गई, तकली का तकुआ ठिठक गया। कता हुआ सूत तकली में जल्दी-जल्दी लपेटकर उसने पूनियाँ और तकली डाली में रख ली।

जयनाथ ने कहा—रहने दो उमानाथ की माँ ! तुम क्यों उठती हो ? पैर धोने के लिये लोटा भर पानी घड़े से क्या खुद नहीं ले आऊँगा मैं ?

पर चाची तब तक पानी ला चुकी थी। वह अपने हाथों से ही जयनाथ के पैर धोने लगी परन्तु जयनाथ ने नहीं माना। खुद पैर धोने लगा।

दातून भी नहीं किया होगा—चाची ने कहा—ठहरो ला देती हूँ। दक्खिन तरफ़ जो घर था, उसमें से वह साहड़ का दातून ले आई और जयनाथ को थमा दिया। बोली—कल सुबह यह दातून रत्ती कहीं से लाया था। देखो न, अभी तक हरा है...कपार पर आई एक सूखी लट को बायें हाथ से ठीक करती हुई चाची फिर बोली—चार अच्छर लिखना तुम्हारे लिये पहाड़ हो गया ! कोई ख़त नहीं, ख़बर नहीं ! बड़े अज़ीब आदमी हो !

जयनाथ ने कोई सफ़ाई नहीं दी, मुस्करा भर दिया। गठरी में से उसने अपनी धोती निकाल ली और दातून करते-करते स्नान करने चला गया।

—३—

बी० एन० डब्लू (बंगाल-नार्थ-वेस्टर्न रेलवे) का एक छोटा-सा स्टेशन । नाम था राजनगर । ११ बजे रात के ट्रेन से चाची और जयनाथ उतरे । स्टेशन से बाहर आकर उन्होंने कोई बेलगाड़ी किराये पर कर लेना चाहा । पाँच कोस पैदल चलना चाची के बूते से बाहर था ।

शुभंकरपुर से तारसराय स्टेशन महज़ कोस भर पड़ता है । उतने में ही चाची को चार जगह बैठना पड़ा था और यह पाँच कोस का लम्बा रास्ता बेचारी कैसे तै करेगी ।

जयनाथ ने तै कर लिया था कि पाँच रुपया भी लेगा तो क्या, बेलगाड़ी बिना किये तरकुलवा नहीं जायेंगे । स्टेशन से बाहर, सड़क की दोनों ओर दस-बारह गाड़ियाँ थीं जरूर लेकिन उनमें से एक भी तरकुलवा की नहीं थी । आसपास की था पर उनके आरोही सुबह की ट्रेन से आने वाले थे ।

चाची का मन था कि किसी तरह किरण फूटने से पहले मैके पहुँच जाती । जयनाथ का भी यही विचार था और ठीक ही था । चाची जिस काम के लिये अपनी माँ के यहाँ जा रही थी उसमें सराहना, खुशी और स्वागत की कल्पना ही नहीं की जा सकती । उसके मुँह पर तो कालिख पुता हुआ था । माँ न जोती होती तो तरकुलवा जाने की अपेक्षा वह यहीं कमला की धार में डूब मरना अधिक पसन्द करती । उसे अपनी माँ के सरल शीतल दयालु स्वभाव पर बहुत भरोसा था, इसीलिये तो जा रही थी ।

जयनाथ ने अपनी भाभी को वहीं सड़क पर एक ओर बैठा दिया और खुद निकले सवारी की तलाश में । उन्हें मालूम था कि दस-बारह इक्के भी राजनगर के स्टेशन पर मौजूद रहते हैं लेकिन

आज उनका भी पता नहीं था। कमला का पुल पारकर जब वह आगे बढ़े तो पाकड़ के नीचे एक इक्का दिखाई पड़ा। मचान पर जो आदमी सो रहा था वह जयनाथ के पैर का आहट पाकर जग गया है, उसने यह बात अपनी खाँसी से जाहिर कर दी। पूछने पर मालूम हुआ कि वह तरकुलवा पहुँचा देने को तैयार है मगर छः रुपया से धेला भी कम न लेगा।

आखिर साढ़े-पाँच पर सौदा पट गया। इक्के वाले ने कहा, आप स्टेशन चलिये। घोड़ी को जोतकर अभी लाया।

उन लोगों के पास सामान के नाम पर कुछ नहीं था। था क्या तो आठ महीने का गर्भ। सही सलामत तरकुलवा तक पहुँचने ही की उन्हें चिन्ता थी। इक्का आया तो उस पर इक्केवान से कहकर आहार (परदा) डलवा दिया गया। इस काम के लिये जयनाथ ने अपनी ही धोती निकालकर दी थी।

चाची सवार हुई और जयनाथ चले पैदल। बाजार के बाद सड़क पर रोड़ियाँ नहीं थीं। बिल्कुल कच्ची और देहाती सड़क हो और उस पर धूल और बालू न रहे तो इक्का मजे में चल निकलता है।

जरा-सी रात बाकी थी कि वे तरकुलवा पहुँच गये। जयनाथ को चुम्भन भा (चाची के पिता) का घर मालूम था। इक्के को लिवाये सीधे वहीं पहुँचे।

इक्के से उतरकर चाची अपने बाप के आँगन में गई। उधर जयनाथ ने इक्के वाले को किराया देकर फौरन रवाना किया। इसके बाद वह खुद भी अन्दर गये।

स्त्रियाँ अपने दामाद से हलका-सा परदा करती हैं और जयनाथ ठहरे यहाँ दामाद के छोटे भाई साहब। खैर। अन्दर जाकर जयनाथ ने देखा कि पच्छिम वाले घर के ओसारे पर माँ-बेटी दोनों एक दूसरे से गले लगाकर सिसक-सिसककर रो रही हैं।

जयनाथ के अन्दर आ जाने पर रोने की इस धीमी आवाज में और भी अधिक धीमापन आ गया।

पैर छूकर प्रणाम करने पर वृद्धा ने आशीर्वाद दिया।

जयनाथ ने सोचा—खुल करके सारी बातें भाभी ने अपनी माँ से न कही होगी और बिना कहे बनेगा नहीं। यह कठिन कर्तव्य मुझे ही करना पड़ेगा।

वृद्धा को अलग ले जाकर जयनाथ ने शांति और संकोच के साथ सारी बात समझा दी और कहा—यहाँ मेरे रहने की कोई जरूरत नहीं। स्नान और भोजन के उपरांत मैं चला जाऊँ, यही अच्छा है। और—

अपने बटुवा में से जयनाथ ने दस रुपये के नोट निकाले। यह रकम वृद्धा के हाथ में थमाते हुए वे बोले—इसकी चिन्ता नहीं कीजिये। बाबा विश्वनाथ की कृपा से अभी इतना और निकाल सकता हूँ।

वृद्धा ने आग्रहपूर्वक रुपये लेने से इन्कार कर दिया। बोली—गौरी (चाची) का कर्म ही फूट गया है तो इसमें किसी का क्यों मैं दोष दूँ। रही खर्चे की बात सो कमला मैया की कृपा से सब ठीक हो जायगा। आप ज़रा भी चिन्ता न करें। हाँ, किसी के साथ रतिनाथ को यहाँ भेज दें तो अच्छा होगा। मैं उसका मुँह देखना चाहती हूँ।

स्नान और भोजन के बाद जयनाथ तरकुलवा से चल पड़े। चैत की दुपहर। धूप कड़ी अवश्य थी परन्तु वहाँ रहना जयनाथ ने बेकार समझा। इसके अलावा उन्हें इस बात की भी चिन्ता थी कि रत्ती घर पर अकेले कैसे रहेगा।

उन दिनों रेलवे-लाइन इस ओर जयनगर तक ही थी। उसके आगे नेपाल का इलाका पड़ता है। और, अब तो नेपाल सरकार ने जयनगर से जनकपुर तक अपनी रेल खोल ली है। उस दिन जयनाथ को शाम की ट्रेन मिल गई, पाँच मिनट की भी देर हुई होती तो गाड़ी खुल जाती।

राजनगर से मधुबनी, पंडौल, सकरी और तारसराथ—चारों स्टेशन वह खड़े ही आये। नेपाली औरत-मर्द सिमरिया घाट जा रहे थे गंगा नहाने। गाड़ी का वह डब्बा उन्हीं से ठसाठस भरा हुआ था।

पहर रात बीतते न बीतते जयनाथ अपने घर पहुँचे। रतिनाथ अपने साथी नरेश के साथ उसीके घर में सो रहा था। जयनाथ न उसे उठाया नहीं। सामान मौजूद था, खिचड़ी पका ली और खाकर सो गये।

उठते ही वह कुटी पर चले गये। यह कुटी गाँव से बाहर पूरब और बलुआहा पोखर के भिड़ पर थी। वहाँ पन्द्रह साल से एक महात्मा रहते थे, जिनका असल नाम कोई नहीं जानता था। सभी उन्हें तारा बाबा कहा करते क्योंकि रोज सुबह-शाम आप “माई तारा माई तारा” बीस-पचीस बार इतने जोर से चिल्लाते कि आस-पास के चारों पाँचों गाँव उस सिंहनाद से परिव्याप्त हो जाते। उनकी धोती लाल-सुर्ख रहती थी। गले में हाथीदाँत के खरादे हुए गोल दानों की माला थी। दाईं बाँह पर दो बड़े-बड़े रुद्राक्ष और एक बड़ा-सा मूँगा पहनते थे। दाढ़ी-मूँछ बाल और नाखून कभी कटाते नहीं थे।

जयनाथ को तारा बाबा के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। वह नित्य एक बार बाबा का दर्शन कर आते। मन की आकुलता ही सुबह-सुबह आज इस ब्राह्मण को वहाँ ले गई।

बिना किसी संकोच के जयनाथ ने तारा बाबा को उमानाथ की माँ के सम्बन्ध में आज सब कुछ बता दिया। सुनकर बाबा की आँखें चमकीं। वह बोल उठे—नाहक ही उस बेचारी को तुम तरकुलवा में छोड़ आये हो ! मुझे क्यों नहीं कहा ? सब ठीक हो जाता। खैर। फिर भी मैं एक यंत्र बनाकर दूँगा, भिजवा देना।

अपने पिता के बारे में रतिनाथ को सोकर उठते ही मालूम हो गया कि लौट आये हैं। वह जल्दी से निबटकर रसोई करने लगा। चाची सब चीजें रख तो गई ही थीं। जब भात भी हो गया, दाल भी

हो गई। बैगन और सहजन की तरकारी चढ़ी थी तब आये जयनाथ। वह उधर से नहाते ही आये थे।

पूजा भगवान की जयनाथ आज स्वयं करने बैठे। वह अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे फिर भी एक कुलीन ब्राह्मण के साधारण दैनिक जीवन में जितनी उपासना और कर्मकांड की आवश्यकता होती है उतना तो जानते ही थे। प्रातःस्मरण, संध्या-तर्पण, पंचदेवता पूजन (शिव, विष्णु और दुर्गा का विशेष रूप से) चंडी (सप्तशती) पाठः..... इतना विना किये उन्हें चैन नहीं पड़ती। इसके अतिरिक्त, विद्यापति की महेसवानी भी जयनाथ बड़ी तन्मयता से गाया करते। सिद्धान्त-कौमुदी और तर्कसंग्रह वह पूरा-पूरा नहीं पढ़ पाये। अपनी अल्पज्ञता पर उन्हें जीवन भर पश्चात्ताप होता रहा।

करीब आधा घंटा पूजा में जयनाथ लगाते थे। यह गोल मटोल मनोहर शालिग्राम नकली नहीं था जिसे बनारस या जयपुर के कारीगर काले पत्थर से तराशकर बनाते हैं। यह भगवान् पाँच पुस्त से इस कुल में श्रद्धा और भक्ति के पात्र बने हुए थे। पल्लिवाड़ महावंश की यह शाखा 'भा' उपाधिवाली थी। जयनाथ के वृद्ध-प्रपितामह नीलमाधव उपाध्याय बहुत बड़े नैयायिक थे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर मुर्शिदाबाद के नवाब ने पूर्णियाँ ज़िले में सौ बीघा ज़मीन लाखिराज ब्रह्मोत्तर के तौर पर उन्हें दी थी। जयनाथ के पितामह-भ्राता जगदानंद भा अन्धे ज्योतिषी थे, उनके दो भाई और थे। गृहकलह हुआ तो यह ब्रह्मोत्तर उन लोगों ने बेच डाला। उन्होंने नैयायिक नीलमाधव उपाध्याय को मुक्तिनाथ का दर्शन करके लौटनेवाले एक महात्मा ने यह शालिग्राम दिया था ! नारायणी नदी (गंडक) का जहाँ उद्गम-स्थान है वहीं यह दिव्य प्रस्तर उस महात्मा को मिला था। बेतिया वे तत्कालीन महाराज के यहाँ एक बार नैयायिकजी गये हुए थे, महात्मा ने उन्हें यह शालिग्राम दे दिया। महाराज ने इनकी महिमा सुनकर सोने का छोटा सा सिंहासन बनवा दिया था। आज से चालीस साल

पहले नैयायिकजी के प्रपौत्र इन्द्रमणि भा ने गया से लौटते समय पटना में भगवान का वह सिंहासन बेच डाला । इन्द्रमणि की पुत्र का मुँह देखने की लालसा कभी पूरी न हुई । हाँ, लड़कियाँ चार अवश्य हुईं । उन्हें अपने से भी उच्च कुल में कन्याएँ दान करने की सनक थी । और मिथिला का ब्राह्मण जो जितना ही कुलीन होता है उसकी दरिद्रता भी उतनी ही बड़ी हुआ करती है । इन्द्रमणि को भी अपनी तीन कन्याओं का भरण-पोषण आजन्म करना पड़ा क्योंकि चार में से तीन दामाद परम अभिजात महादरिद्र और ~~बिकौआ~~ थे । मरते वक्त, जो कुछ था, लड़कियों के नाम चढ़ा गये । इन्द्रमणि जब मृत्युशय्या पर थे तभी जयनाथ ने यह भगवान (शालिग्राम) उनसे माँग लिया था । आज पन्द्रह साल से जयनाथ उनकी पूजा करते आ रहे हैं ।

पूजा समाप्त करके वह खाने गये ।

अपने पुत्र की सहनशीलता और कायन्मता देखकर प्रसन्न होने का अवसर आज जयनाथ को यह पहली ही बार मिला हो, ऐसी बात नहीं है । अब तो रतिनाथ एगारह साल का हो गया है । पाठशाला में सबसे अधिक तीव्र बुद्धिवाला समझा जाता है । बहुत कम बोलता है । कुर्ती गुजब की है उसमें । गरीबी के मारे बाप उसे हिन्दी-अंग्रेजी स्कूल में नहीं रख सका । और रसोई वसोई तो जब रत्ती सात साल का था तभी से करना जानता है । सातवें (गर्भस्थिति के अनुसार आठवें)

*बिकौआ उन्हें कहा जाता था जो अपनी कुलीनता बेच-बेचकर अपनी जीविका चलाते थे । एक एक व्यक्ति बाईस-बाईस तक शादियाँ करते थे । उनका जीवन ससुरालों में ही कट जाता था । समाज में उनकी काफी इज्जत थी । आदरपूर्वक आमंत्रित करके तब लोग उनसे अपनी कन्या का पाणिग्रहण करवाते थे । तीन, चार और पाँच दफे बिकनेवाले बिकौआ अब भी मैथिल ब्राह्मणों में यदा-कदा दिखाई पड़ जाते हैं ! यह प्रथा अब मर चुकी है ।

दो तो तुम्हारा बँधा हुआ है ही—गौरी की माँ ने कहा—और मैं तो इतना-सा दे रही हूँ ।

मुस्कुराकर सिर हिलाते हुए चमाइन ने कहा—यही बबुई तुम्हारी और भी तो दो बार यहाँ से बच्चे पैदा कर गई है । तब कहाँ मैंने तुमसे कुछ कहा मलिकाइन ? मगर आज तो मामला ही कुछ और है...

इतना कहकर वह गम्भीर हो गई । ज़रा देर बाद बोली—अगर थाने में किसी ने जाकर चुगली कर दी तो मुझे जहल—दामुल होगा । तुम लोग तो धनवाली हो, हाकिम भी तुम्हारी तरफ़दारी कर लेगा । कितने जोखिम का काम है पेट गिराना ! पता चल जाय तो सरकार मेरा सत्यानाश कर देगी...

गौरी की माँ पाँच रुपये का एक नोट और निकाल लाई फिर भी वह राजी नहीं हुई । उसने कहा—दश और देने होंगे । जब काम कर दूँगी तो अपनी खुशी से आप कुछ न कुछ और दे दीजियेगा ।

चमाइन की बात पर गौरी की माँ ने गौर किया । वह काफी प्रतिभाशील स्त्री थी । समझ गई कि पचीस तो यह लेकर ही रहेगी । जरूरत ऐसी आ पड़ी है कि पचास पर भी अड़ जाय तो देना ही पड़ेगा । खैर, दश रुपये का एक नोट और भी वह निकाल लाई । देते हुए कहा—देखो, मेरी लड़की को इस मुसीबत से पार कर दो । पाँच-सात दिन के अन्दर ही यह सब हो जाना चाहिये और गुप्तगुप्त ।

जीभ निकालकर चमाइन बोली—भला यह भी क्या कहने की बात है मलिकाइन ? आपकी बदनामी क्या हमारी बदनामी नहीं है ? पर एक बात कहती हूँ, माफ़ करना, बड़ी जातवालों की तुम्हारी यह विरादरी बड़ी मलेच्छ, बड़ी निटुर होती है मलिकाइन ! हमारी भी बहू-बेटियाँ राँड़ हो जाती हैं, पर हमारी विरादरी में किसी के पेट से श्राव-श्राव नौ-नौ महीने का बच्चा निकालकर जंगल में फेंक आने का

ग्वाज नहीं है। ओह, कैसा कलेजा होता है तुम लोगों का ! मइया री मइया !

गौरी की माँ निसाँस खींचकर भी कुछ बोलीं नहीं। अपनी लड़की के बड़े हुए पेट पर उनका ध्यान गया और ऐसा लगा कि उसके अन्दर एक मुन्दर और स्वस्थ शिशु पड़ा हुआ है। आँखें मुँदी हुई परन्तु पलकें लगातार फड़क रही हैं—ओ अभागे, तुम्हारा क्या कसूर ? यही चमाइन तुम्हें गाँव के बाहर किसी भुरमुट के अन्दर डाल आयेगी ! फिर कुत्ते और सियार नोच-नोचकर तुम्हें खा जाएँगे ! जैसे और बच्चे अपनी माँ के पेट से समय पर बाहर आते हैं तुम उस तरह समय पर गर्भ से बाहर नहीं निकल सकते। तुम्हारे जन्म से प्रसन्न हो सोहर गावे, ऐसी एक भी औरत नहीं होगी...मेरा बस चलता तो—

अच्छा, मलिकाइन, अभी मैं चली। कल शाम को आऊँगी।— इतना कहकर चमाइन आँगन से बाहर हो गई लेकिन फिर लौट आई। कहा—जरा देख तो लूँ बबुई को।

माँ ने कहा—पूरबवाले घर में है, आओ।

गौरी को भपकी आ गई थी। आहट पाते ही उसने आँखें खोल दीं। चमाइन ने करीब जाकर देखा। बोली—आठवाँ महीना है, बबुई, नाहक तुमने बखत बर्बाद किया। पेट तीन ही चार महीने तक काबू में रहता है। अब देखना, तन्दुरुस्ती पर कितना बुरा असर पड़ता है।

माँ को अंदासा हुआ। उसने आँखें फाड़कर पूछा—क्यों री, गौरी की देह को फिर तैयार होने में बहुत दिन लग जाएँगे ?

हाँ, मलिकाइन !—चमाइन घर से बाहर निकलती हुई बोली—दुसंभी मालिश करवाती रहें तो पच्चीस दिन लगेंगे। हाँ, आज और कल बबुई को कुछ खाने नहीं देना।

आज अभी तो खा चुकी—माँ ने कहा—हाँ, रात और कल नहीं खाने दूँगी। तो तू कल रात आयेगी न ?

जरूर माईजी, आती तो मैं आज शाम को भी मगर डीहटोल में सलहेस* महाराज की पूजा है। भाव-भगत होगी। हमारे यहाँ के सभी जाएँगे देखने।

इतना कहकर बुधना चमार की औरत चली गई। गौरी की माँ ने उँगली पर गिन कर हिसाब लगाया। बड़ी छुट्टियों में, खास कर गर्मियों में जयकिशोर गाँव अवश्य आया करते। इस बार भी आएँगे। माँ ने सोचकर देखा, आधा चैत बीत चुका है। अभी समूचा महीना वैशाख पड़ा ही है। जेठ की दशहरा से पहले शायद ही कभी जयकिशोर का स्कूल बन्द हुआ हो। और, तब तक गौरी बिल्कुल तन्दुरुस्त हो जायेगी। इस गणित से उस वृद्धा को कुछ आश्वासन मिला। जयकिशोर बाबू बहुत ही अच्छी प्रकृति के आदमी हैं फिर भी माँ को खटका था कि अपनी बहन के सम्बन्ध में यह कुकांड जब किसी तरह उन्हें मालूम होगा तो कुछ कहेंगे अवश्य। इसके अतिरिक्त, उमानाथ भी किसी किसी साल आम खाने आता है। अपनी माँ के बारे में जब वह सुनेगा तो आश्चर्य नहीं कि कुआँ में कूदकर जान दे दे या माँ को ही मार दे। लड़की को छः मास आठ मास अपने पास रखना माँ को और भी भारी लग रहा था। इन बातों को सोचते-सोचते वृद्धा का दिमाग जब पथरा गया तो एकबार फिर आप पूरबवाले घर में घुसी और गुस्से में आकर गौरी की ठोड़ी पर एक ठुनका लगा दिया। गौरी हाउ हाउ करके रो पड़ी। आँखों से आँसू का धार जो बहने लगा वह बन्द होने का नाम ही नहीं लेता था। माँजी कड़ाकर कुछ देर अवाक खड़ी रही फिर धम से वहीं बैठ गई और लड़की को अपनी छाती से लगाकर आप भी रोने लगी।

*सलहेस दुसाधों का देवता है। पीपल, पाकड़ या बरगद के नीचे कुटी बनाकर उसमें सलहेस की प्रतिमा स्थापित की जाती है। आकार-प्रकार में यह अश्वारोही सामंत की तरह लगते हैं।

दरिद्र कुल में लड़की ब्याहने का ही यह दुष्परिणाम था। शुभंकरपुर के यह वैद्यनाथ भा कुलीनता की दृष्टि से ही जरा बड़े थे। गौरी के पिता चुम्भन भा को स्वयं भी पीछे जाकर यह विवाह-सम्बन्ध असन्तोषप्रद लगने लगा। जमाई महाशय दमा के रोगी और प्रकृति के सुस्त थे। शादी के बाद तो पढ़ना जान-बूझ कर ही उन्होंने छोड़ दिया। समुराल आते तो बीस-बीस दिन पच्चीस-पच्चीस दिन तक पड़े रहते। सतरंज का इतना शौक था कि एक बैठक में दश-दश घन्टे खेलते रहते। कमाकर शायद ही दो पैसे कभी भाजी ने अपनी स्त्री के हाथ पर दिया हो। जाते-जाते एक क्वारी लड़की और एक अबोध शिशु वेचारी के मत्थे ठोक गये। यह लोग औसत दर्जे के मध्यवित्त की एक लड़की को अपने यहाँ ले जाकर उसे नाना प्रकार के अभाव-अभियोगों की परिधि में डाल देते हैं। लड़की जिन्दगी भर अपने माँ-बाप को उलाहना देती रहती है। वैद्यनाथ को विरासत में सात बीघा खेत मिले थे। तीन बीघा शुभंकरपुर में और चार बोघा कोसी के किनारे (उत्तर भागलपूर में)। बस्ती का नाम था रामगंज। वहाँ वैद्यनाथ का ननिहाल था। नाना को लड़का नहीं हुआ। लड़की मात्र थी। तीन दौहित्र थे। कमलनाथ, वैद्यनाथ और जयनाथ। इन्हीं तीनों के नाम पर वह अपनी जायदाद चढ़ा गए। शुभंकरपुर के खेत तो वैद्यनाथ बेंच-बेंचकर खा ही गए थे, डेढ़-दो बीघा रामगंज में भी बन्धक रख दिया था।

बहनोई की मृत्यु के बाद जयकिशोर ने चाहा कि गौरी हमेशा के लिए तरकुलवा ही रह जाये मगर गौरी को यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ। यह दूसरी बात है कि इस समय बेचारी एक विंचित्र परिस्थिति में पड़ गई है मगर यों गौरी की प्रकृति में स्वाभिमान की मात्रा कूट-कूट कर भरी हुई है। इसी कारण पितृगृह की अपेक्षा पतिगृह में रहना उमने पसन्द किया। एक बार आग्रह करने पर अपनी माँ को गौरी ने कहा था—बाबू (पिता) ने कुश तिल जल लेकर मुझे दान

कर दिया फिर मेरा इस घर में रहना अनुचित नहीं होगा माँ ? विवाहिता के लिए पितृकुल का अमृत भी पतिकुल के माँड़ या पोने के साधारण जल की तुलना में तुच्छ है। माँ, तभी तो तुमने अपनी नानी के धन पर लात मार दिया था ? है न माँ ? ... यह सब बातें एक एक करके माँ को याद आती रहीं और उसकी आँखों से जल-प्रवाह जारी रहा।

न जाने कितनी देर तक माँ-बेटी रोती रहीं ? शोक और पश्चात्ताप के इस समुद्र से उनका उद्धार तब हुआ जब कि चरकर वापस आई हुई भुल्ली भैंस चरवाहे की लापरवाही से आँगन के अन्दर घुस आई। उसके खुरों की खुट्टे-खुट्टे खट्टे-खट्टे ने माँ का भी और बेटी का भी स्थान एवं समय की ओर ध्यान खींचा। अपने को छुड़ाकर माँ घर से बाहर निकली तो देखा अमावस की संध्या अपने साज-सरंजाम लेकर आसमान से धरती पर उतर चुकी है। ऊपर ताकने पर एक तारा नज़र आया। गौरी की माँ ने चारों ओर घूम-फिरकर आसमान में दूर-दूर तक आँखें दौड़ाईं परन्तु दूसरा तारा न दिखाई पड़ा। तब हाथ जोड़कर उसने पहले तारे को प्रणाम किया और साथ ही यह श्लोक पढ़ा :—

एका तारा मया दृष्टा द्वितीया नैव दृश्यते ।

तद्दोष परिहाराय नारदाय नमोऽस्तुते ॥*

नौकरानी ने आकर कहा — रसोई में देर न हो जायेगी, मलिकाइन ! क्या बात है ? आज तवियत कुछ ढीली देखती हूँ ।

गौरी की माँ ने कहा—नहीं, कुछ नहीं सुक़खो ! यां ही जरा सो गई थी। पानी भर चुकी घड़ों में ?

* एक तारा तो मैंने देख लिया, दूसरा नहीं देख पा रही हूँ। हे नारद महाराज, इस दोष को दूर करने की नीयत से मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ — (देखना, किसी से झगड़ा मत लगाना)

हाँ, मलिकाइन ! अब जाती हूँ—उसने कहा । नजदीक आकर गौरी की माँ वाली—अपनी सास को ज़रा भेज देना । जरूरी काम है ।

अच्छा ! सुक्यो चली गई । थाली में दिन का जूठा भात, दाल और कई किस्म की भाजियाँ लिये हुए थी । मेहमान की थाली में दुगुना भात परोसना कोई नई बात तो है नहीं—जयनाथ सबेरे ही खाकर चले गये थे । और, तब से अब तक करीब आठ नौ घंटे खाने की यह सामग्री खुली पड़ी थी । सैकड़ों मक्खियाँ इससे परितृप्त हुई होंगी । जो-मकई-मड़ुआ की रोटी खाकर तंग आये हुए सुक्यो के बच्चे देखते ही इस पर टूट पड़ेंगे, चाट-पोछ कर थाली साफ कर देंगे । सुक्यो, उसकी सास, उसका घरवाला सब ललचाई निगाहों से उस दृश्य को देख भर सकेंगे !

गौरी की माँ को खाना बनाने में मन नहीं लग रहा था लेकिन कल मंगल है । प्रति मंगल को उपवास रखती है । अभी कुछ पेट में डाल देगी तो अच्छा रहेगा ।

चटपट उसने आग जलाई । अदहन हो जाने पर चावल उसमें छोड़ दिया । उसीमें चार-छः आलू चोखा के लिए डाल दिये । सुजनी डाल कर बीच आँगन में लेट रही । लेटे-लेटे सोचने लगी—इस तरह गौरी को मैं छिपाकर कब तक रख सकूँगी ? इसी तरकुलवा में यह घटना क्या पहले कभी नहीं हुई है ? अवश्य हुई है, तब ? चतुरा चौधरी की लड़की, मक्खन पाठक की पतोहू, पंडितजी की बहन..... गौरी की माँ के सामने का समूचा आसमान तारों से झलमल-झलमल कर रहा था । नक्षत्रखचित यह रजनी उसको वैसी ही लग रही थी जैसी चाँदी के दश-पाँच गहनों से भूषित कोई साँवली औरत ।.....वह थोड़ी देर तक आँखें मूँदे रही, फिर मानो किसी निश्चय पर पहुँच गई हो, उसकी आँखें चमक उठीं । अन्दर के संकल्प को वाणी का परिधान देने के लिए उसके होठ फड़कने लगे । वह अपने आप ही बुदबुदाने

आई है। इन बातों से रतिनाथ अपनी चाची के लिए जान तक देने के लिए हाजिर रहता। पिता के प्रति उसकी भक्ति या श्रद्धा बिल्कुल दिखावटी थी। हृदय से वह चाची को ही बाप और माँ सब समझता था।

आँगन में तीन घर थे। दक्खिन, पूरब और उत्तर तरफ। पच्छिम वाला डीह खाली था। मिट्टी की तीन भीत और बाँस के छप्पर, खर, (खढ़) से छाए हुए। पूरबवाला घर चाची का था। दक्खिन और उत्तरवाले घर जयनाथ के थे। कमलनाथ को शुभंकरपुर से न कुछ लेना था न देना। अपने हिस्से की जायदाद उन्होंने इन्हीं लोगों के सुपुर्द कर दी थी। इसी तरह जयनाथ और उमानाथ की रामगंजवाली जायदाद का उपभोग कमलनाथ करते थे। कमलनाथ पढ़े-लिखे नहीं थे, उनके तीन लड़के थे, तीनों मूर्ख। यह मूर्खता इन लोगों की चार-पाँच पुश्त की बिरासत थी। मिथिला में कहावत है कि मूर्ख का लड़का मूर्ख हो सकता है मगर पंडित का लड़का पंडित नहीं होगा। परन्तु, पंडित का लड़का भी पंडित होता है जैसे कि नीलमाधव उपध्याय का पुत्र जयमाधव भ्रा। नीलमाधव के तीन लड़के थे। जयमाधव, वेणीमाधव और श्रीमाधव। इनमें दो अपठित थे, उनके जिम्मे खेती-बाड़ी का काम था। जयमाधव के दो लड़के हुए, सोनमणि और राजमणि। सोनमणि ने व्याकरण का अध्ययन काशी में रह कर किया था। सोनमणि के एकमात्र लड़का हुआ इन्द्रमणि। वही मूर्ख भगवान के छत्र-सिंहासन बँचकर खा गया। कमलनाथ आदि श्रीमाधव के प्रपौत्र थे। वैद्यनाथ ने पढ़ना आरम्भ किया था परन्तु ब्याह के बाद उनकी पढ़ाई शीघ्रबोध और मुहूर्त्त चिन्तामणि तक ही सीमित रह गई।

आँगन में पच्छिम वाला डीह खाली पड़ा था। उस पर मौसम के मुताबिक भिंडी, बैंगन, मिर्चा वगैरह उपजाया जाता। इस वास-स्थान से पूरब तालाब था, दक्खिन बाग और बाँस। बाग में चार

ही छः आम के पेड़ थे। दो पेड़ कटहल के, एक बड़हल का, एक सहिजन का। अड़हुल, इन्द्रकमल, करबीर, कनैल, थलकमल, थल-कुमुदिनि, हरसिंगार, बेला—दो-दो एक-एक भाड़ इन फूलों के थे। जम्बीरी नीबू का भी एक बड़ा-सा भाड़ था। तालाब में रोहू ब्वारी भाकुर से लेकर सिंगी, मांगुर, इंचा, पोठी, यानी बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी मछलियाँ थीं। तालाब में इन लोगों का अटारहवाँ हिस्सा पड़ता था। तीनों भाइयों के बीच नौ बीघा खेत था सो अलग। पुरगों की लगाई हुई अमराई थी, छठवाँ भाग उसमें भी होता था। दश कट्टा जमीन ऐसी थी जिसमें खट्ट होता था। घर छवाने के लिए खर-बर इन्हें खरीदना नहीं पड़ता था। एक परिवार बहिया (खबास) का था, कुल्ली राउत का। कुल्ली राउत का परदादा ठीठर राउत था। उसने सात रुपये में अपने को रतिनाथ के परदादा के हाथ बेच दिया था।

गृहस्थी के उपयुक्त सब कुछ था लेकिन करने वाला कोई नहीं था। जयनाथ का मन खेती-बाड़ी में लगता तो घर की यही हालत रहता? सारे खेत बटाई पर लगे हुए थे। पूरी उपज घर में नहीं आती थी। साल-साल कुछ खेत वेचना या रेहन रखना पड़ता था। उमानाथ की माँ भला कर ही क्या सकती थी? कोई टोकता तो जयनाथ कह उठते—का चिन्ता मम जीवने यदि हरिविंशम्भरो गीयते? यदि भगवान का नाम विश्वंभर है तो फिर चिन्ता किस बात की? खेत जोता ही रह जायगा यदि बारिश न हो। धन्य भगवान् कि धान उपजता है, कि हमारे तुम्हारे मुँह में दोनों जून पाँच-पाँच कौर भात जाता है! धन्य भगवान्!

जयनाथ को इस बात का बड़ा अभिमान था कि वह ब्राह्मण हैं। पूजा-पाठ गढ़-शप सैर-सपाटा बाबा वैद्यनाथ बाबा विश्वनाथ दुर्गा-तारा-काली—इनकी चर्चाओं के अतिरिक्त यदि और कोई वस्तु जयनाथ को प्रिय थी, वह थी विजया बनाम भंग भवानी। बम्भोलेकी

बूटी का समय पर सेवन हो, वह इसके पावनन्द थे। जब आधा पहर दिन रहता तब जयनाथ के नित्यकृत्य का यह महत्त्वपूर्ण अध्याय आरम्भ हो जाता। इस सिलसिले में वह मौलवियों का दृष्टान्त बड़े ही उल्लासपूर्वक दिया करते—देखो, मौलवी लोग कहीं भी हों, गाड़ी पर चाहे नाव में, जल में चाहे थल में, परन्तु नमाज़ का समय जहाँ आया कि अँगोछा बिछा कर चट से घुटने टेक देंगे ! आहा हा हा !! कितनी तत्परता है ! और, तब जोर-जोर से जयनाथ भंग रगड़ने लगते। उनका दीप्त चेहरा और भी दीप्त हो उठता। बीच-बीच में सांटे को रोककर कंडो की ओर गौर से देख लेते और बोल उठते—स्वधर्म निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

औरत मर गई तो लोगों ने कहा था—दूसरी शादी कर लो जयनाथ, नहीं तो घर बर्बाद हो जाएगा। लड़का अभी बहुत छोटा है, उसकी देख-रेख के लिए भी तो कोई चाहिए।

नहीं नहीं—जीभ निकालकर और दोनों हाथ दोनों कान पर डालकर जयनाथ तब बोले थे—हरे हरे ! इतना हलका मुझे मत समझिए। जगदम्बा की कृपा होगी तो दश वर्ष में रत्ती ही इस योग्य हो जाएगी। मैं तो अब यही प्रयत्न करूँगा कि देवघर या विन्ध्याचल में कोई मारवाड़ी अपने राम के लिए छोटी-सी एक मड़ैया डलवा दे, बस।

सुनने वाले अवाक् रह गए थे।

कुछ साल जयनाथ रत्ती को इधर-उधर टाँगते फिरे पीछे लड़के ने एक दिन मुँहलाकर कहा—इस तरह मैं पढ़ नहीं सकूँगा। भुट्टू और दुन्नी मेरे सहपाठी थे, अब वे मुझसे एक दर्जा आगे हैं।

उमानाथ की माँ ने भी समझाया। जयनाथ इस बात पर राजी हो गए कि लड़का गाँव में ही रहे और संस्कृत पढ़े।

तभी से रत्ती अपनी चाची के पास रहता आया है।

उमानाथ बूढ़ानाथ पाठशाला (भागलपुर) में रहकर पढ़ रहा था । इससे पहले कुछ दिन वह अपने मामा के पास मोतिहारी में रहा । बुद्धि मन्द होने के कारण अपने पाठ उसे कभी याद नहीं हुए । हिसाब में जोड़ना जैसे-तैसे उसको आ गया लेकिन गुणा और भाग दिभाग में घुसता ही नहीं था । घर से आया हुआ धी पिघलाते समय उमानाथ की असावधानी से कड़ाही ही उलट गई, सारा धी राख और चूल्हे की गरम मिट्टी पी गई । मामा ने भांजे को इस अपराध के लिए दो तमाचे लगाए तो भागकर वह भागलपुर चला गया, अपने एक साथी के पाम पाँच साल से वहीं है । प्रथमा में पिछले साल फेल किया था, इस साल पासकर जाने की सम्भावना है । गीता भाषाटीका बाँचकर सुनाने से एक मारवाड़ी सीधा-सामान देता है । रोज मालिश करवाकर पंडितजी कहीं से दो रुपया मासिक और दिलवा देते हैं ।

वह घर बहुत कम आता है । एक बार रत्ती से भी उमानाथ ने कहा था भागलपुर चलने के लिए । परन्तु रत्ती ने जवाब दिया— मध्यमा तक तो गाँव में भी पढ़ा जा सकता है भैया, फिर कहीं क्यों ले जाओगे ?

रत्ती का कहना यथार्थ था । पंडितों के इस गाँव में छोटी-बड़ी दो पाठशालाएँ थीं । एक लोअर प्राइमरी स्कूल था । छोटी पाठशाला के अध्यापक का नाम था पंडित योगानन्द ठाकुर, व्याकरणाचार्य । प्राइमरी स्कूल के मास्टर थे जयवल्लभ लाल दास । वह पुराने थे । हमेशा एक खजूर की लुड़ी उनके पास पड़ी रहती थी । लड़कों को पीटते भी खूब थे और पढ़ाते भी खूब थे । बड़ी पाठशाला का नाम था “श्री तारिणी संस्कृत टोल” शुभंकरपुर । यह चटसाल बहुत पुरानी थी । बिहार जब बंगाल सरकार की मातहत था तब संस्कृत पाठशालाएँ टोल कहलाती थीं । वही पुराना नाम अब तक इस पाठशाला का चला आ रहा था । पंडित भी इसके बहुत ही बूढ़ थे, नाम था बबुअन मिश्र । व्याकरण और धर्मशास्त्र में आप बड़े ही निष्णात थे । दूर-दूर से लोग पतिया-प्रायश्चित्त लिखाने आते । आस-पास के इलाकों में

धार्मिक बातों को लेकर जब वाद-विवाद उपस्थित होते तो फैसला आप पर ही निर्भर करता। मिश्रजी के पास बड़ी उम्र के छात्र ही पढ़ा करते।

जयनाथ को अब यही महत्वाकांक्षा थी कि लड़का पढ़-लिखकर अच्छा पंडित बने। रतिनाथ था भी पढ़ने में खूब तेज। अपने साथियों में हमेशा वह बीस ही रहा। उसकी मनसा थी हिन्दी-अंग्रेजी पढ़ने की मगर जयनाथ मास्टर को फीस देने में बराबर आनाकानी करते। लोअर प्राइमरी का इम्तिहान देकर पिछले साल रत्ती आया तो अपर प्राइमरी की किताबें बाप से माँगीं। इधर-उधर टोह लेकर जयनाथ को जब पता चला कि चार-पाँच रुपये सिर्फ किताबों में ही लग जाएँगे तो तै किया—नहीं, कभी नहीं! यह हो नहीं सकता। प्रातः स्मरणीय नोलमाधव उपाध्याय का वशधर म्लेच्छ भाषा पढ़ेगा? उस दिन धरता उलट जायेगी और आसमान से अंगारे बरसने लगेंगे! वकील बालस्टर बनकर प्याज-लहसन और अंडा नहीं खाना है रत्ती को, उसे तो अपने पूर्वजों की कीर्ति-रक्षा करनी है...बस, एक फटा-मैला अमरकोष कहीं से उठा लाये और बेटा के हाथ में उसे थमाते हुए कहा—क्या करना है अंग्रेजी पढ़कर, किस्तान बनना है! लो यह अमरकोष, जिस दिन यह कंठस्थ हो जायेगा उस दिन तीनों लोक तुम्हारे लिए हस्तामलक हो जाएँगे। क्या समझते हो, मैंने ज्यादा पढ़ा है? नहीं नहीं, बेटा, यही अमरकोष थोड़ी लथु (कौमुदी) थोड़ा सिद्धान्त (कौमुदी)! बस! फिर भी देखो, लोग मुझे पंडितपछाड़ कहते हैं।

सिर से पैर तक रतिनाथ ने अपने पिता को देखा और फटा हुआ अमरकोष ले लिया। मन ही मन उसे बहुत अफसोस हुआ कि प्राइमरी स्कूल के पुराने साथियों से बिछुड़ना पड़ेगा। जयनाथ बोले—दो पन्ने इसमें नहीं हैं सो मैं पाठशाला जाकर किसी से लिखवा दूँगा। एक दुअत्री लगेगी जिल्द में, कोई बाजार जायेगा तो वह इसे लेता जायेगा और बँधवा लायेगा। और हाँ, “विद्यारंभे गुरुः श्रेष्ठः” मतलब यह कि

वृहस्पतिवार को विद्या का आरम्भ करना अच्छा है । आज कौन-सा दिन है ?

शनीचर—रत्ती बोला ।

जयनाथ ने उँगली पर हिसाब लगाकर कहा—शनि एक, रवि दो, सोम तीन, मंगल चार, बुध पाँच और वृहस्पति छः । आज से छठवें दिन हमारे साथ तुम चलना । योगानंद ठाकुर की पाठशाला में जय गणेश जय गणेश करके अमरकोष आरम्भ कर देना ।

मिर भुकाकर रतिनाथ ने पिता का आदेश मंजूर किया परन्तु हृदय उसका रो रहा था ।

रत्ती अपने बाप से बहुत डरता था । ज़रा-ज़रा-सी बात पर जयनाथ उसे पीटते थे । पिटाई में वह इस बात का ख्याल नहीं रखते कि दश-ग्यारह साल का बच्चा है, कोमल शरीर और लचीली हड्डियों में चोट ज्यादा लगती होगी । छड़ी, कलछो, चैला, लोढ़ी जो भी हाथ में पड़ जाता उसीसे पीटने लगते । कभी-कभी खंभे में कसकर बाँध देते । एक दफ़े गर्दन पकड़कर ऊपर उठा लिया और धरती पर पटक दिया था । ये घोर दंड उसे किने अपराधों के कारण सहने पड़ते ? बहुत ही मामूली अपराध हुआ करते । खाते समय जमीन पर ज़रा पानी डुल गया । थाली में थोड़ी दाल बाकी रह गई । पैसा या अघेली चुरा ली । तालाब में नहाने गये तो हाथ-पैर पटककर ज़रा तैर लेना चाहा । पेड़ पर चढ़कर अमरूद खाते समय नाखून भर खरोंच लग गई । लुक-छिपकर कहीं तमाशा देखने निकल गये । इसी किस्म के अपराध हुआ करते थे । पिता के भय से रतिनाथ जी भर कभी दौड़ नहीं लगा सकता था । खिलखिलाकर खूब हँसना उसके लिए स्वप्न की वस्तु थी । पेड़ पर चढ़ना कल्पना मात्र थी ।

चाची उसे बहुत बचाती थी । इसीसे उसका रोम-रोम चाची के प्रति कृतज्ञ था । किसी के मुँह से चाची की शिकायत जब सुनता तो गुस्सा के मारे उसके छोटे-छोटे नथने फड़कने लगते ।

और अभी चाची नहीं थी। जयनाथ ने एक दिन कहा था—उमानाथ की माँ बीस-पचीस रोज में लौटेंगी। यह अर्सा रत्ती के लिए पहाड़ था। बहुत ही बच-बचकर उसे चलना था। रसोई तो खैर जयनाथ खुद भी खुशी-खुशी कर लेते थे। घर के और कामों में भरसक रत्ती भी हाथ बँटाता। बचा हुआ समय वह पढ़ाई में लगाता। इन्द्रमणि के घर में रामायण का एक बड़ा-सा पोथा था—तुलसीदासी। रत्ती ने निश्चय किया कि पाँचो दिन वह रामायण बाँचने में लगा देगा। डरते हुए उसने बाप से अपनी यह इच्छा प्रकट की। वह राजी हो गये।

इन्द्रमणि स्वयं तो अब थे नहीं। तीनों लड़कियाँ बाप के वैभव की मालकिन थीं। चौथी लड़की चूँकि बिकौआ की औरत नहीं थी, ससुराल में ही रहती थी, उसका पति धनी था। ससुर की जायदाद में हिस्सा बटाने की उस भले आदमी की कभी इच्छा ही नहीं हुई। ये तीनों लड़कियाँ भी एक दूसरे से अलग हो गई थीं। दश-दश बीघा खेत एक एक के बखरे पड़ा था। तीन में से एक निःसंतान थी। एक के एक लड़का और दूसरे के दो लड़कियाँ थीं। तीनों नाम मात्र की सधवा थीं। पाँच दिन में रत्ती अयोध्याकांड के अन्त तक पहुँच गया।

वृहस्पति के दिन रतिनाथ ने पाठशाला में जाकर अमरकोष आरम्भ किया। जयनाथ ने अपने बटुए से एडवर्ड-छाप का एक रुपैया निकाला और लड़के के हाथ पर धर दिया। कहा—गिरो पंडितजी के पैरों पर, प्रणाम करो।

रत्ती ने रुपया गुरुजी के पैर पर रख दिया फिर प्रणाम किया। गद्गद् हाकर पंडितजी ने आशीर्वाद दिया—“आयुःमान् भव विद्यावान् भव” !

अगले दिन सुबह तरकुलवा के लोगों को मालूम हो ही गया कि गौरी आई है। कब आई, क्या आई, कैसे आई—इस जिज्ञासा ने पुरुषों से अधिक स्त्रियों को ही चंचल बनाया। लोगों को इतना भर पता लग सका कि कलेजे की बीमारी है, डाक्टर ने हिलना-डुलना तक मना कर रखा है।

लेकिन इससे क्या ? लोग तो हिल-डुल सकते थे। उनका तो घर से निकलना वर्जित नहीं था ?

आहिस्ते-आहिस्ते एक एक, दो-दो करके टोल-पड़ोस की औरतें जयकिशोर बाबू के आँगन में आने-जाने लगीं। गौरी की माँ ने अपने दिल को काफी मजबूत बना लिया था—कोई आये, कोई देखे। मेरी लड़की किसी का गला काटकर तो आई नहीं।

गौरी भाई के खाली पलंग पर लेटी पड़ी थी। दूर के रिश्ते की दो भाभियाँ विल्कुल करीब आ गईं, और गौर से घूरते हुए पूछा—लली, आखिर क्या हो गया है तुम्हें ? चेहरा पीला पड़ गया है, बदन पर खून का नाम नहीं है। नाखून सफेद पड़ गये हैं। यह क्या होता है तुम्हें ?

गौरी कुछ बोली नहीं। मन ही मन अपनी स्त्री-जाति पर उसे क्रोध हुआ—ओ अभागी औरतों ! मुझे क्या हो गया है, यह तुम भलीभाँति जानती हो। तुम्हें रत्ती-रत्ती पता है, कि इस तरह का चेहरा एक स्त्री का कब होता है। इस तरह की भैंप, इस तरह का संकोच किसी विधवा की मुखाकृति पर कब छाया रहता है, यह भी तुम भली-भाँति जानती हो। फिर क्यों मेरा दिमाग चाटने आई हो ? तुम्हें जिसका खटका है उसी दुर्भाग्य का मैं शिकार हूँ। मेरी नियति के साथ क्यों मखौल करने आई हो...

कि उनमें से एक बिल्कुल पास आकर गौरी को देखने लगी। जरा देर बाद आहिस्ते से उसने अपना हाथ गौरी के सीने पर रख दिया। चट से गौरी ने उसका हाथ पकड़ लिया—नहीं, मुझे कुछ नहीं होता है भाभो। छोड़ दो।

उसकी आँखों की कड़ाई से भाभी सकपका गई। दो कदम पीछे हटकर उसने कहा—नहीं लला, यां ही मैं देख रही थी। किमी ने कहा, तुम बीमार होकर यहाँ दवा कराने आई हो। सो मैं जरा देखने चली आई।

इतनी देर बाद अब दूसरी भाभी ने मुँह खोला—सुनती हूँ, कलेजे में दर्द होता है।

गौरी कुछ बोली नहीं। घूरकर रह गई।

जिस उल्लास से यह दोनों स्त्रियाँ गौरी के पास आई थीं, वह मर गया। पत्थर पर तीर मार-मारकर उन्होंने अपने तरकस खाली कर दिये, तो चर्ला गौरी की माँ से बातें करने। वह अजवायन सुखा रही थी। खुद छाँह में बैठी थी, और आध सेर के करीब अजवायन आँगन में पड़ा सूख रहा था। ये स्त्रियाँ जो रिश्ते में उसकी पतोहू होती थीं, दिखावटी नम्रता से एक ओर खड़ी हो गईं, और इशारे से पूछा—चाची, इस अजवायन का क्या करोगी?

गौरी की माँ को लगा कि समूचे गाँव ने मुझे चिढ़ाने के लिए इन्हीं दोनों लोकड़ियों को भेजा है। वह बाघिन की भूखी आँखों से उन्हें घूरने लगी कि इतने में उन्हीं में से एक बोली—बहिना, पटुआ का साग अजवाइन से ल्लौंकने पर बहुत ही स्वादिष्ट हो जाता है। इतनी-सी मामूली बात आश्चर्य है कि तुम नहीं जानतीं।

अब गौरी की माँ से न रहा गया। उन्हें विश्वास हो गया कि जान-बूझकर ये मुझे बनाने आई हैं। मगर उसने अपने आबेश को दबाया, और बोली—बेटी, यह दवा में काम आता है। जरा रुककर उसने फिर कहा—कहाँ आई थीं गौरी को देखने?

आधी घूँघट के अन्दर से सिर हिलाकर दोनों ने जतलाया—‘हाँ’ । और आँगन से बाहर हो गईं । गौरी की माँ बरबराने लगी—‘लुच्ची कहीं की ! अजवायन का और क्या होता है, दवा बनती है, वह दवा जो कि ब्याने के बाद औरतें खाती हैं । जानबूझ कर मुझे चिढ़ाने आई थीं ।

उसके बाद दिन भर फिर कोई नहीं आया । शाम को सुक्खो की सास आई । उसने बतलाया कि कैसे गाँव भर में गौरी की चर्चा हो रही है । कि कैसे इस घटना को लेकर औरतें लड़ी-लड़ी, थू-थू कर रही हैं । मर्दों का लोकमत क्या है, इस बारे में सुक्खो की सास जरा भी जानकारी नहीं रखती थी । सब कुछ सुन-समझकर गौरी की माँ बोली—‘अब तो बात फैल गई, जानत सब कोई !’

थोड़ी देर चुप रहकर फिर ल्लाती ठोकती हुई वह बोली—देखें, कौन क्या बगड़ता है ? मैं रुई का फाहा नहीं हूँ कि लोग फूँक देंगे, और उड़ जाऊँगी । मर्द हो तो मामने आकर कोई कहे ।

सुक्खो की सास ने अपनी मलिकाइन को शान्त किया । जात-जाते वह कहती गई—जब तक इस जर्जर देह में साँस बाकी रहेगी, गौरी की माँ, तब तक किसकी मजाल है जो तुम्हारी ओर उँगली उठाये ।

पहर भर रात बीती कि चमाइन आई ।

गौरी की माँ को इस बात का खतरा था कि कहीं लड़की के प्राण न निकल जायें । परन्तु बुधुआ चमार की औरत इन कामों में बहुत होशियार था । उसने कह दिया—‘नहीं मलिकाइन, खतरा किस बात का ? यह मेरे लिए कोई नई बात तो है नहीं, ऐसा मौका तो आता ही रहता है ।

चार मास का, छः मास का, आठ मास का, पेट चाहे कितना ही असाध हो इन हाथों के लगते ही सब ठीक हो जाता है, कमला मैया की कुछ ऐसी ही मेहरबानी है.....

माँ ने दक्खिन ओर मुँह करके दोनों हाथ उठा लिए और आतं स्वर में गुनगुनाई—दोहाई बाबा बैजनाथ की ! इस मुसीबत से राजी खुशी मेरो लड़की निकल गई, तो गंगाजल भरकर मैं सुल्तानगंज से तुम्हारे धाम पहुँचूँगी ।

इतना कहकर छलछलाई आँख और भर्राई आवाज से नाम लेकर बाबा बैजनाथ को उसने प्रणाम किया ।

चमाइन अपने काम में लगी ।

—७—

तारा बाबा की उम्र सत्तर साल से कम न होगी । उनके प्रति लोगों की बहुत ही गम्भीर श्रद्धा थी, बतला ही चुके हैं । शुभंकरपुर की मिट्टी से उन्हें एक प्रकार का मोह हो गया था । साल डेढ़ साल बाद वह विन्ध्याचल या पशुपतिनाथ की यात्रा में निकला करते थे । डेढ़ दो महीने बाद वापस आ जाते । फिर वही गाँव, फिर वही कुटी ।

गाँव से पूरब बलुआहा पोखर था । कहते हैं, खोदते समय उसमें से इतना बालू निकला कि उसका नाम ही बलुआहा पड़ गया । यह पोखर शुभंकरपुर गाँव के मालिक राजा बहादुर दुर्गानन्दनसिंह का था । आपके परदादा महाराजकुमार गणेशसिंह ने इसे खुदवाया था । बाईस बीघा जमीन पानी के अन्दर पड़ता था । आठ बीघा जमीन भिंड (भीड़, भीट) थी । आस-पास पाँच कोस में ऐसा तालाब नहीं होने से बलुआहा पोखर इलाके भर में मशहूर था । चौगवाँ के धनी मल्लाह इस पोखर की मछलियों का ठेका लिए हुए थे । उन्हें दो हजार रुपया जलकर के तौर पर जमीनदार को प्रतिवर्ष देना पड़ता था । मछलियाँ इतनी अधिक निकलती थीं कि कम से कम छ हजार रुपये बिक्री से आ जाते थे । इसका मतलब यह नहीं कि तालाब की मछलियों का

स्वाद गाँव के लोगों की लालसा तक सीमित था। प्रकट और अप्रकट रूप से गाँव के लोग काफी मछलियाँ पीटते थे। बड़ी और छोटी सभी किस्म की मछलियाँ ! कहने को गाँव में और भी कई पोखर थे, मगर उनकी मछलियाँ लोगों की पारखी जीभ को रुचती नहीं थी।

यह तो हुई मछली की बात। पानी का यह हाल था कि भारी से भारी अकाल में भी बलुआहा पोखर पास-पड़ोस के दस गाँवों की टेक रखता था। कभी उसका पानी खराब होता नहीं देखा गया। बरसात के दिनों में वह समुद्र जैसा लगता था। शरद् ऋतु की चाँदनी में नील निमेष आकाश बिखरे नक्षत्रों की अपनी जमात के साथ बलुआहा पोखर के श्यामल वक्षस्थल पर जब प्रतिफलित हो उठता, तो भिड़ (भीट) पर बैठे हुए निपट निरक्षर दुसाध-मुसहड़ भी कवि की तरह उससे भरा करते ! उन्हें जाने अपने जीवन की मधुमय घड़ियाँ एक एक कर याद आतीं, या क्या।

हेमन्त की हल्की ठंड में सिल्लियाँ और बनमुरगियों का झुन्ड बलुआहा के निर्मल जल में घने सेंवार पर इधर से उधर छप-छप करके दौड़ा करता। शिशिरकी नीरव निस्तब्ध निशा में रह-रहकर एक-आध बड़ी मछली पानी पर उतराकर अपने पर फटकारती तो ठिठुरती प्रकृति के वे एकान्त क्षण मुखरित हो उठते। बसन्त में ग्रामीण बालक बालिकाएँ लाख मना करने पर भी अपना जल-विहार आरम्भ कर देते। वैशाख और जेठ के महीने में तो मानों वरुण देवता का खजाना धनी-गरीब, बूढ़े-बच्चे, औरत-मर्द सभी के लिए खुल जाता। इन्हीं दिनों मछुए महाजाल डालकर बलुआहा की तमाम बड़ी मछलियाँ निकाल लेते। बरसात के दिन भी भूलने के नहीं हैं। बाहर से जब पानी का रेला आता तो इस पोखर की बची-खुची मछलियाँ बाहरी दुनिया की सैर करने निकल पड़तीं। उनका वह अभियान स्वाद-लोलुप ग्रामीणों के लिए महोत्सव का द्वार उन्मुक्त कर देता। मतलब यह कि चौमासे में भी काफी मछलियाँ मारी जाती थीं। आसिन और

कार्तिक की कड़वी दुपहरियों में कांटे डालकर मछलियाँ फँसाना देहाती जीवन का एक बड़ा रोमान्स है ।

भींट पर चारों ओर बरगद, पीपल, पाकड़, मौलश्री, आम, और जामुन के पेड़ थे । गर्मी, बरसात और जाड़े के दिनों में चरवाहा और राहगीरों के वे माँ-बाप थे । अपनी शरण में आये हुए पशु-पक्षियों के लिए भी उनमें अपार ममता थी । कीड़े-मकोड़े तक उनकी स्नेह-सुधा से वंचित न थे ।

इसी पोखर पर तारा बाबा की कुटिया थी ।

बाबा थे तो फक्कड़, मगर अपने जीवन का भेद उन्होंने किसी से नहीं कहा । बड़ी मुश्किल से इन्द्रमणि ने यह पता लगाया था कि आप बड़े उच्च कुल के ब्राह्मण हैं और सौतेली माँ से अनवन हो जाने के कारण संसार के प्रति विरक्त हो गये हैं LX

आसिन के महीने में बड़ी धूम-धाम से बाबा दशभुजा दुर्गा की पूजा किया करते । शुभंकरपुर से उत्तर, नजदीक ही छोटा-सा एक गाँव पड़ता है, परसौनी । वहाँ के वंशीमंडल प्रतिमाये बनाने में बहुत ही कुशल थे । यह गुण उनमें अपने पूर्वजों की परम्परा से आया था । आज-कल तो लोगों में इन बातों की ओर से काफी उदासीनता दिखाई देती है परन्तु सौ-पचास साल पहले का जमाना कुछ दूसरा ही था । उन दिनों गाँव-गाँव में प्रतिमाये बना करतीं । आसिन में दुर्गा की । कार्तिक में काली, चित्र गुप्त और कार्तिकेय की । माघ में सरस्वती की, चैत में राम, लक्ष्मण, सीता तथा उनके स्वजन-परिजन अनुचर-परिचर की—कुल मिलाकर तेरह मूर्तियाँ । भादों में कृष्ण आदि की । इनके अलावा मिट्टी, रंग, और कूची के इन उस्तादों की जरूरत और भी कामों में हुआ करती थी ।

इसके लिए समूचा गाँव बाबा की मदद करता । वह थे भी तो गाँव भर के गुरु । गाँव भर के शुभचिन्तक । कितने गरीबों की बाबा ने चुपचाप सहायता की होगी । कितने रोते चेहरों के आँसू पोंछे होंगे ।

पीठ थपथपाकर कितने ही लड़खड़ाते पैरों को आगे बढ़ाया होगा। यह कोई बता नहीं सकता। उनके बारे में नाना प्रकार की किंवदन्तियाँ जनता में प्रचलित हो चुकी थीं। कहते हैं, एक दफे रात को बाबा की कुटिया में चार घुसा। थोड़ी-बहुत काम की जो भी चीज़ मिली, उसे ले करके वह बाहर निकलने लगा तो निकल ही न सका। उसके पैरों में मानां किसी ने जाँत बाँध दिया। बाबा बाहर चारपाई पर सोये पड़े थे। सुबह सुबह उठे, तो चोर को ज्यों का त्यों बैठा पाया। पूछने पर वह रो पड़ा। बाबा ने उसे सान्त्वना दी और खिला-पिलाकर बिदा किया। मरी गाय को बाबा ने जिला दिया, इस बात को कहते-कहते लोंग थकते नहीं! छट्ठू कुम्हार की एक पूँछ-कटी काली गाय थी, मगर दूध बहुत देत थी। एक दिन चरकर आने के बाद वह चित्त-पट हो गई, जंगल की कोई जहरीली घास खाकर मर गई। छटुआ दौड़ा-दौड़ा गया, धम्म से बाबा के पैरों पर गिरा। बाबा एक जड़ी उपाड़ लाये, और गाय के मुँह में डाल दिया। थोड़ी देर पीठ पर हाथ फेरते रहे कि वह उठ खड़ी हुई।

बाबा खाने-पीने या वरतने की चीज़ संजोकर नहीं रखते। इसका फल यह होता है कि न देने वालों की कमी है और न ले जाने वालों की। परिवार में सिर्फ दो कुत्ते हैं। उन्हें बाबा बहुत मानते हैं। यात्रा में निकलने पर खासकर उन्हीं कुत्तों के लिए एक सेवक को नियुक्त कर जाते हैं। सर्दी, जुकाम या फोड़ा-फुन्सी हो जाने पर उसी तत्परता से इन कुत्तों की दवा-दारू होती है जिस तत्परता से राजा बहादुर दुर्गानन्दनसिंह की एक मात्र कन्या की। शाम को बड़े प्रेम से बाबा भाँग छानते हैं। उसमें नशा की अपेक्षा ठंडई की ही मात्रा अधिक रहती है। जयनाथ जैसे भंग-भक्ता का मन बाबा की ठंडई से नहीं भरता।

उस दिन जब बाबा भाँग छान रहे थे, ठीक उसी वक्त जयनाथ पहुँचे। पैर छूकर प्रणाम किया। बाबा ने कहा—बच्चा, भोज-पत्र तो है नहीं। यंत्र कैसे बनेगा ?

कुटिया के ओसारे पर खंभेली के सहारे बैठते हुए जयनाथ ने कहा—तो क्या होगा ? बादामी रंग के कागज़ पर लिख देने से काम नहीं चलेगा ?

दांतों तले जीभ दबाकर बाबा ने शिर हिलाया—नहीं रे नहीं । भोजपत्र का माहात्म्य ही कुछ और होता है । यों तो पीपल के पत्ते पर भी बीज-मंत्र लिख देने से काम चल सकता है, परन्तु यह तो खास मामला है न ? भगवती त्रिपुरसुन्दरी का एक पंचाक्षर मंत्र है, वह अवांछित गर्भ गिराने में अनुपम है । समझते हो न ? इसीलिए कहा कि भोजपत्र ही चाहिये ।

जयनाथ कुछ देर के लिए मौन रहे, फिर कहा—पंडित कालीचरण पाठक साल-साल नेपाल जाते थे । वहाँ से वह ढेर का ढेर भोजपत्र लाते थे । उनको मरे आठ-दश साल हो गये हैं । ठहरिये, मैं जरा उनके लड़के से पूछ लूँ ।

इतना कहकर तुरत जयनाथ वहाँ से बस्ती की ओर चल पड़े ।

कालीचरण का मकान बस्ती के पूर्वी छोर पर था । जयनाथ वहाँ पहुँचें तब तक पंडितजी का लड़का अपनी अमराई की ओर निकल चुका था । फिर भी आवाज देने पर पंडितजी की पत्नी बाहर आई । रिश्ते की भाभी होने के कारण वह जयनाथ के सामने आती थी । परन्तु यह क्या, छूटते ही पंडिताइन ने जो पूछा, उस प्रश्न का सम्बन्ध जयनाथ की कल्पना के भोजपत्र से तो था नहीं; उल्टे वह प्रश्न उमानाथ की माँ पर चोट करता था ।

क्यों बाबू—पंडिताइन ने पूछा—लक्ष्मण ने आसन्नप्रसवा सीता को ले जाकर कहाँ छोड़ दिया ?

कुछ हतप्रभ होकर जयनाथ ने कहा—छोड़ा तो आग्विर जंगल में ही ।

और आप लक्ष्मण लौट आये ?

जयनाथ ने चुप्पी साध ली ।

पंडिताइन बोली—धिकार है तुम्हें ! उमानाथ की माँ और तुम वधों से साथ रहते आये हो और आगे भी सारी जिन्दगी साथ कटेगी, यह मुझे विश्वास है । फिर तुम उस बेचारी को अकेली तोप के मुँह पर छोड़ आये हो ।

जयनाथ ने झुँझलाकर कहा - तो भौजी, मैं करता ही क्या ? तरकुलवा में बैठे-बैठे पहुनाई करना और लोगों के कटाक्ष सहना..... भला, इससे क्या फायदा था ? उनकी माँ सब ठीक कर लेंगी ।

ठीक तो कर ही लेंगी—पंडिताइन का मुर मद्धिम पड़ गया । कुछ रुककर उसने फिर कहा—बुरा न मानना जयनाथ बाबू ! मैं दमयन्ती नहीं हूँ जो हाथ धोकर उमानाथ की माँ के पीछे पड़ जाऊँ । मेरे दिल में मुसीबत की मारी उस औरत के लिए बड़ा दर्द है ।—तब दक्खिन की ओर मुँह करके पंडिताइन बोलीं—जाने गंगा माई, उमानाथ की माँ को मैं अपनी सगी बहन समझती हूँ । इस दुर्घटना के बाद भी उसके प्रति मेरा स्नेह ज्यों का त्यों है । परन्तु—

इतनी देर बाद पंडिताइन का ध्यान इस बात की ओर आया कि अरे ! जयनाथ को बैठने के लिए तो कहा ही नहीं । देखते ही लगी मैं उस पर तीर चलाने ! तब, ममता भरी आवाज में उसने कहा—कब तक खड़े रहोगे ? जरा बैठ तो लो ।

दरवाजे पर तख्तपोश पड़ी थी । जयनाथ उस पर बैठने लगा तो पंडिताइन बोली—अजी ठहरो, दरी तो ले आने दो ।

जयनाथ मना ही करते रहे, तब तक लपककर आँगन से वह दरी उठा लाई और तख्तपोश पर उसे बिछा दिया ।

ममता की इस प्रतीक को जयनाथ बहुत गम्भीरता से देख रहे थे । हाथ पकड़कर पंडिताइन ने बैठा दिया—ताकते क्या हो ? बैठो न । कोई जल्दी थोड़े है ।

जयनाथ ने कहा—जल्दी तो नहीं है, लेकिन जिस आँगन में भूकम्प हुआ हो उस आँगन के प्राणी चैन से तो कहीं बैठ नहीं सकते ।

जयनाथ की आँखें डबडबा आईं । उसके दिल के चढ़े हुए तारों को पंडिताइन ने जरा छू भर दिया था कि वे झनझना उठे । उस तीव्र झनकार की लहरी में जयनाथ का पूरा व्यक्तित्व तिनके की तरह कंपित हो उठा । छन भर के लिए उसकी आँखों के आगे उमानाथ की माँ का चमचमाता चेहरा नाचने लगा । उमानाथ की माँ ! तुम इतनी सुन्दर क्यों हुईं ? पूर्व-जन्म के किस अभिशाप से वैधव्य का यह दुर्वह भार ढो रही हो ? मेरी कृतघ्नता को, देवि, कभी क्षमा मत करना... जयनाथ की आँखें छलक पड़ीं ।

पंडिताइन से नहीं रहा गया । अपनी सफेद धोती के आँचल की खूँट से जयनाथ के आँसू पोंछती हुई वह कहने लगी—ओह ! नाहक ही यह सब मैंने तुम्हें कहा । वच्चा तो तुम हो नहीं, रोते क्यों हो ?

पंडिताइन की इस सान्त्वना का फल यह हुआ कि आँसू और भी बह निकले । अब अपने ही अँगोछे से आँख पोंछकर और नाक साफ करके जयनाथ ने इशारा किया कि भौजी बैठ जाओ तुम भी ।

पंडिताइन आँगन की ओर चली और कहती गई—भाग मत जाना, मैं सुपारी ले आती हूँ ।

बड़ी मुश्किल से जयनाथ ने अपने कां प्रकृतिस्थ किया । तब तक सुपारी के दश-बारह खंड तश्तरी में सामने रख दिये गये थे । पंडिताइन ने कहा—हाँ, यह तो नहीं बताया कि मेरे लड़के की कौन-सी जरूरत थी जो पुकार रहे थे ?

दो टुकड़े सुपारी मुँह में डालकर जयनाथ बोले—कालीचरन भैया नेपाल से भोजपत्र लाया करते थे । तारा बाबा को एक यंत्र बनाना है, दो उँगली भर भोजपत्र चाहिए । और कहाँ मिलेगा ?

अपनी गोल-गोल आँखों को बड़ी करके पंडिताइन बोली—लाते तो थे..... ठहरो, मैं देखती हूँ ।

पंडिताइन भोजपत्र की खोज में अन्दर गई और जयनाथ सोचने लगे—आह ! कितना अच्छा स्वभाव है इस स्त्री का ! इसके पिता

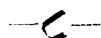
नागाजुन

जिन्दगी भर बनैली में राज-पंडित रहे। सजनता की मूर्ति थे। जैसा बाप वैसी बेटी। क्यों न हो, हीरे की खान से काँच थोड़े ही निकलता है !.....

पंडिताइन फौरन वापस आई, उसके हाथ में भोजपत्र था। जयनाथ को उसे देती हुई वह कहने लगी—पंडित रोज चूड़ी का पाठ करते थे। उसी पोथा के गत्तों में यह भोजपत्र पड़ा था। मुझे ख्याल आया और मैं निकाल ले आई।

भोजपत्र लेकर जयनाथ चले तो तश्तरी में बचे पड़े सुपारी के टुकड़े उठाकर पंडिताइन ने कहा—बाबू, यह रख लो बटुए में। खुद न खाना तो किसी को खिला देना।

बाह भौंजी, तुमने भी खूब कहा, खुद न खाना.....



पाठशाला में भी जल्द ही रतिकान्त ने छोटे-बड़े विद्यार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। पंडितजी भी उस पर प्रसन्न रहते थे क्योंकि अपने पाठों को खूब मन लगाकर वह याद किया करता। इसके अलावा जब जिस काम में वह उस लड़के को लगाते तो उसमें वह जरा भी आनाकानी नहीं करता। हाँ, पंडितजी का धौला बैल बड़ा बदमाश था। एक दिन रत्ती से उन्होंने कहा—इसे ले जाकर तालाब से पानी तो पिला लाओ। रत्ती ने असमर्थता जाहिर की तो पंडितजी बोले—अरे, यह काम तो सात साल का हमारा मुन्नु कर लेता है।

इस पर रत्ती ने कहा—गुरुजी, हमारे अपने यहाँ तो बैल गाय हैं नहीं। फिर हम क्या जानें कि किस तरह पुचकारने से बैल सीधी राह पकड़कर पानी पी आता है।

यह पंडितजी बड़े ही चतुर थे। बारह रुपया महीना डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से भी लेते थे, और पाँच रुपया राजा बहादुर से भी। पतिया-प्रासचित से भी कुछ-न कुछ निकल आता था। पुरोहिती के कामों में भी पंडितजी का दखल था। गरज यह कि कुल मिलाकर पंडित की आमदनी पच्चीस रुपये माहवार पड़ जाती थी। अपने ही दालान पर पाठशाला थी। सात-आठ बीघा खेत थे। दो चचेरे भाई थे। तीन लड़कियाँ दो लड़के। तीन गाय-बैल, एक हलवाहा एक खेत-मजदूर। घर-गिरस्ती का छकड़ा मजे में पंडितजी चला रहे थे। अध्यापन का कार्य उनके लिए उतने महत्त्व का नहीं था जितने महत्त्व की खेती-बाड़ी और पुरोहिती। राजा बहादुर दुर्गानन्दनसिंह पंडितजी को खूब मानते थे। अन्दर हवेली में रोज चंडी-पाठ करने का संकल्प पंडितजी के दादा ही कर गये थे। अभी तक उसे यह पंडितजी चलाये जा रहे हैं। इसीलिए बारह रुपया सालाना मिलता है। रक्षाबन्धन के दिन राजा बहादुर की कलाई में पंडितजी राखी बाँधते हैं। विजयादशमी के दिन राजा बहादुर के शिर पर जौ के मृदु मनोरम हरित-गौर अंकुर डाल आते हैं। इसका भी एक-एक रुपया बँधा है। पर्व-त्यौहार के दिन कभी पंडितजी अपने घर नहीं खाते, ऐसे अवसरों के लिए राजा बहादुर के यहाँ उनका नित नैवता रहता है। पेट भरकर खा भी आते हैं और अँगोछे में बाँधकर ले भी आते हैं।

राजा बहादुर और उनके पूर्वजों का गुण-गान पंडितजी के नित्य-कृत्य का ही एक अंग है। अपने छोटे-बड़े छात्रों को पाठ के आदि, मध्य या अन्त में राजा बहादुर से सम्बन्ध रखने वाली कथाएँ अवश्य वह सुना जाते हैं और है भी ठीक। वैद्यनाथ धाम में उस साल नौ दिनों तक हरिवंश पुराण रानी ने यदि पंडितजी के मुँह से न सुना होता तो यह लड़की भी हुई होती? पंडितजी कहा करते—यह मेरा ही दुर्भाग्य है कि राजा बहादुर के यहाँ लड़का नहीं हो रहा है...यह कह-

कर दायें हाथ की तीन बिचली अँगुलियों से वह अपना चन्दनचर्चित ललाट ठोकने लगते ।

शुभंकरपुर की उस छोटी-सी पाठशाला में नियमित रूप से पढ़ने वाले लड़कों की तादाद तेरह थी । उनमें से पाँच शब्द रूपावली, धातु रूपावली और अमरकोष पढ़ रहे थे । रत्ती पढ़ने में तेज तो था ही, महीना पूरा होते-होते अपने साथियों में प्रमुख हो गया । इस पाठशाला का वायुमंडल उसे और भी स्वतन्त्र मालूम पड़ता था । प्राइमरी स्कूल में तीस-पैंतीस लड़के थे । खजूर की छड़ी लेकर बैठे हुए मुंशी जयवल्लभलाल की कड़ी मूँछोंवाली वह सूरत रत्ती को बहुत भयावनी लगती थी । वहाँ अनुशासन काफी कड़ा था । घर में क्रोधी पिता के डर से जी भरकर वह कभी मुस्करा भी तो नहीं सका ! इस पाठशाला का यह शिथिल अनुशासन रतिनाथ की चेतना के लिए कुछ स्फूर्तिप्रद साबित होने लगा । यहाँ पंडितजी लड़कों को परेशान नहीं करते थे । बहुत हुआ तो हलकी उँगलियों से कान उमथ दिये; गधा, कुत्ता और पाजो कह दिया; बस । खजूर की उस छड़ी के आगे मीठी सजा का यह संसार रत्ती को राचक लगा । इसका फल यह हुआ कि उसे मुक्त-प्रकृति के साथी मिले । उछल-कूद का मौका मिला ।

अपने पिता से कई दफे उसने कहा—शब्द रूपावली और धातु रूपावली मँगवा दीजिये । अमरकोष की जिल्द बँधवा दीजिये । परन्तु जयनाथ ने बराबर झिड़क दिया—अभी यह तो खतम करो । किताबें आ जायेंगी । जिल्द नहीं हुई तो क्या हुआ ? तुम्हारे हाथ से तेल चूता रहता है ?

भीतर ही भीतर रत्ती का दिल कचोट और आत्म-ग्लानि से भर उठता । उसे चाची याद आतीं ।

एक दिन वैशाख की कड़ी दुपहरी में वह पाठशाला पहुँचा । और लड़के दो-अढ़ाई बजे के करीब आया करते थे । रत्ती भी दूसरे दिन

समय पर ही आता था, मगर आज वह निर्जन दुपहरी में पाठशाला के अन्दर घुसा ।

सरस्वती की एक सुन्दर प्रतिमा थी । प्रतिवर्ष बसन्तपंचमी (माघ) के दिन सरस्वती की नई प्रतिमा का स्थापन होता था, और साल भर वह प्रतिमा ज्यों की त्यों वहाँ रहती थी । दूसरे कोने में एक रद्दी-सी आलमारी थी । उसी में पंडितजी अपनी पुस्तकें रखा करते । टूटी होने के कारण वह ऐसी थी कि कोई भी चीज अन्दर रख या बाहर निकाल सकते थे । लड़कों को जिस दिन खूब खेलने का मन रहता, उस दिन वे भी अपनी किताब आलमारी में डाल देते थे । आज रत्ती ने अपने साथियों को आलमारी के अन्दर किताब डालते देखा था ।

इधर-उधर नजर मारता, और पैर बचाता हुआ वह आलमारी के पास पहुँचा । अन्दर हाथ डालकर चार-छः किताबें निकाली । तीन नई और अच्छी किताबें उसने छाँट लीं और पुराने अखबार में लपेटकर उन्हें पाठशाला से जरा दूर एक झाड़ी में छिपा दिया । फिर शंकित चित्त से बारबार झाड़ी की ओर देखता हुआ वह अपने घर चला आया । उस दिन दुबारा रत्ती पाठशाला नहीं गया ।

अगले दिन सुबह जब पाठशाला पहुँचा तो उसके सभी साथी चोर को गालियाँ दे रहे थे । रतिनाथ को उन्होंने घर लिया, और ऊपरा-ऊपरी कहने लगे—देखो रत्ती, आलमारी के अन्दर से किसी ने हमारी किताबें उड़ा ली हैं—हे सरस्वती माता, आपको तो पता होगा !

रत्ती का दिल धड़क रहा था । आज तक उसने बाहर चोरी नहीं की । अपने घर में समय-समय पर दुअन्नी, इकन्नी, चवन्नी और अठन्नी चुराई थी । बाप ने दो-तीन दफे पकड़ा भी था । और आज रत्ती के इस छोटे से जीवन में यह पहला ही अवसर है कि किसी को कोई चीज़ चुराई है ।

रत्ती के अन्दर से एक धीमी-सी आवाँज आई—धिकार है ! अपने साथियों की किताबें तुम चुरा ले गए !

भूठ, वह पचीसों बार और बोला है, मगर आग में तपाये लोहे के लाल गोले की भाँति इतना असह्य भूठ रत्ती के कंठ से कभी बाहर नहीं निकला। वह बोला—चोरी ! नहीं, नहीं, चोरी नहीं, किसी ने देखने के लिए उठा लिया होगा।

साथी एक साथ चिल्ला उठे—अरे भाई, इन छोटी-छोटी किताबों की जरूरत और किसको पड़ी होगी ? भूत-प्रेत तो ले नहीं गये होंगे ! अच्छा, परसौनीका जूगल कामति कटोरा चलाना जानता है। जिस साले ने हमारी किताब ली होगी, उस पर अगर कटोरा न चलवाया, तो.....

यह सुनकर रतिनाथ का चेहरा फक हा गया, उसे लगा कि चोरी का पाप दानव बनकर आज उसको निगल जायगा। पिता सुनेंगे तो कच्च खा जायेंगे। हे भगवान ! बेचारे की आँखों के सामने अंधेरा छा गया। शौच जाने का बहानाकर वह नजदीक के पोखर की ओर चला गया। उसके मुँह से इतनी-सी भी बात नहीं निकल सकी कि साथियो ! कटोरा चलवाने की क्या जरूरत है ? पाठशाला के सभी लड़कों को सुनाकर यह कह दो, आज शाम तक—नहीं, कल सुबह तक आलमारी के अन्दर किताबें वापस न आईं तो हम परसौनी जाकर चोर पर कटोरा चलवायेंगे।

रत्ती शौच के लिए गया तो पोखर के भिन्डे से नीचे उतर कर इमली के एक बूढ़ पेड़ की आड़ में बैठ गया। उसकी आँखों से आँसू का अविरल प्रवाह अपने आप वह चला, मुदा आज चाची नहीं थी कि अपनी धोती की खूँट से आँसू पाछुती और पीठ पर हाथ फेरती हुई चुमकारती, पुचकारती !

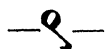
सूने मन से वह बड़ी देर तक रोता रहा। रो-रोकर अपनी आँखें उसने लाल कर लीं, और वापस लौटा। पोखर में नहाने के घाट पर

घुटने भर पानी के अन्दर धँस कर उसने आँख-मुँह, और हाथ-पैर धोये। बाहर निकलकर अँगोछे के फटे-पुराने कपड़े से चेहरा पांछा और फिर पाठशाला आ गया। अपनी किताब लेकर जब पढ़ने बैठा तो सत्तो (सत्यनारायण) ने कहा—तुम्हारी आँखें क्यों लाल हो गई हैं रत्ती ?

पोखर पर गया था, उड़ते कीड़े पड़ गए थे। बड़ी मुश्किल से निकले। मसलने से आँखें लाल हो गईं—रतिनाथ ने जवाब दिया।

थोड़ी देर बाद रत्ती घर के लिए चल पड़ा—आज पिताजी नहीं हैं, रसोई करनी पड़ेगी।

उस दिन भी दुबारा वह पाठशाला नहीं गया ! अगले दिन आलमारी में गायब किताबें मौजूद थीं। किताबें मिलने की खुशी में सत्तो, परमा, उत्तिम, नित्या और रत्ती—पाँचों साथियों ने मिल कर सरस्वती मैया को पाँच पैसे की मिठाई अगले इतवार को चढ़ाना मंजूर किया।



आम अब बड़े-बड़े हो गये थे। वैशाख का महीना खतम हो गया था। चाची के न रहने से इस बार सतुआ संक्रान्ति रत्ती के लिए फाँकी रही। बीच-बीच में कई बार अंधड़ और तूफान आये। इतने आम गिरे कि धिबही की टहनियाँ हलकी हो गईं। अचार तो बनाती ही कौन ? रह गई आमिल और फाँकी की बात, इसमें जयनाथ ने तत्परता दिखाई। दो मजूरिन रखकर गिरे-पड़े आमों का आमिल और फाँकियाँ उन्होंने काफी बनवा लीं।

अब इक्के-दुक्के आम पकने लग गये थे। एक दिन सुबह-सुबह रतिनाथ ने एक पका आम पाया और खुशी के मारे चिल्ला

उठा—पिताजी, मैंने गोपी* पाई है, यह देखिये, कैसा बढ़िया है। घर के अन्दर से ही जयनाथ ने आवाज दी—अरे सूँघ मत लेना, भगवान को भोग लगायेंगे।

रत्ती ने वह आम लाकर फूल-डाली में रख दिया।

इस बार शुभंकरपुर में आम खूब नहीं फला था। जिनके बाग में दश पाँच भी कलमी पेड़ थे, उनकी तो बात नहीं, लेकिन बीजू ही बीजू के पेड़ जिनके बाग में थे, उनके लिए सचमुच ही आम कम था। जयनाथ के पिता एक कलकतिया और एक मालदह का कलम लगा गये थे। सेवा नहीं होने के कारण ये दोनों पेड़ प्रौढ़ होने से पहले ही बुड्ढे हो रहे थे। कुछ डालें सूख गई थीं। कुछ में टहनियाँ कम थीं। फिर भी सौ दो सौ आम हर साल वे देते थे। मालदह (लँगड़ा) का पेड़ लम्बा नहीं, पैला हुआ था। जब जयनाथ नहीं रहते उस समय मालदह की टेढ़ी-मेढ़ी डालों पर रतिनाथ का एक छत्र राज्य रहता। टोल-पड़ों के पाँच-सात लड़कों को बुलाकर खेलने लग जाता था। और इस बार तो मालदह में गिने-गिनाये पचास आम बच रहे थे। मालदह आमों का राजा है—जिसी ने एक बार खाया, उसका कहना है। कलकतिया फलने में बहादुर होता है, लेकिन जयनाथ का कलकतिया अपने मालिक की लापरवाही से चिढ़कर कसम खा बैठा है, कम से कम फला।

इससे क्या? आम के अपने पेड़ फले या न फले, जयनाथ ब्राह्मणों की भिक्षावृत्ति के बहुत प्रशंसक थे। राजा बहादुर की ड्योढ़ी के चारों ओर सैकड़ों वीघा कलम बाग थे। दुनिया के लिए आम का अकाल भले ही हो, लेकिन राजा बहादुर का स्टेट कभी आम के फलों से खाली नहीं जाता था। दश-दश, पाँच-पाँच करके भी फलते तो लाखों फल

*जेठ के आरम्भ में रोहिणी नक्षत्र का जब प्रवेश होता है, तो आम पकने लग जाते हैं। इक्के-दुक्के पक जानेवाले आमों को वहाँ गोपी कहा जाता है।

निकल आते। बम्बई ग्राम जेठ से ही पकने लगता है, और बथुआ ठेठ कुआर तक जाता है। इन चार-पाँच महीनों में स्टेज के अमले ग्राम खा-खाकर लाल बुन्द हो जाते। अवधनारायण मल्लिक राजा बहादुर के यहाँ दीवानगीरी करते थे। मल्लिकजी के घर बच्चे हाँ-होकर मर जाते। न लड़का जीता, न लड़की। ताग बाबा के आदेश से दीवान जी साधु-ब्राह्मणों की बड़ी सेवा करते थे।

जयनाथ पर तो उनकी खास कृपा थी, वह कई बार मल्लिकजी के यहाँ महामृत्युंजय का जप कर चुके थे। दक्षिण के अलावा दो धोतियाँ कमबल का आसन, अर्घा, पंचपात्र, आचमनी, ताँवे की पवित्री (अँगूठी) मिला करती। जितने दिनों तक जप चलता, तस्मई (स्वीर) और पकवानों से एकभुक्ति होती।

जयनाथ को मल्लिकजी का बड़ा भरोसा रहता था। जब जाते, शास्त्र-पुराण की बात सुनाकर, कोई न कोई चीज या एक-आध रुपया ले आते। दीवानजी की तीसरी पत्नी का मायका मानिकपुर में था और जयनाथ की भी शादी वहाँ हुई थी। गाँव के रिश्ते में वह जयनाथ की सरबेटी होती थी और इन्हें फूफा कहा करता। इस प्रकार मल्लिकजी के परिवार में जयनाथ का प्रवेश हो गया था। अब, दुनिया में चाहे आम फले या न फले, मल्लिकजी बरकरार रहें; जयनाथ को और क्या चाहिये ?

आठ-दस दिन बीतते-बीतते धिवही के आम पक-पककर पट-पटाने लगे। दिन भर की प्रचंड गर्मी, दोपहर रात तक की टिटकी हवा और उसके बाद रात्रिशेष में जब दक्षिण पवन ग्रीष्म ऋतु की श्रान्त शिथिल अलस प्रकृति-नटी के सिमसे हुये आँचल को फरफराने लगता, तो धिवही के विशाल वृक्ष की निस्पन्द टहनियाँ उच्छ्वसित हो उठतीं—टभ-टभ करके आम गिरने लगते। पूर्वी आसमान में शुक्रतारा अपने मधुर उज्ज्वल प्रकाश से दिग्बधुओं को ललचाता हुआ सहसा उग आता कि रत्नी की आँखें खुलतीं। वह पेड़ के नीचे

जाकर आम चुनने लगता। एक-एक करके बीती बातें उसे याद आतीं.....पद्मा की आँखें। बागों के लम्बे बाल ! अपर्णा का गोल-मटोल चेहरा। और इन सब पर अपने बड़े-बड़े परन्तु हलके पंख फैलाकर मुस्कराने वाला चाची का वह अनुपम सौन्दर्य। आसिन की दूध-धुली रातों में इन लड़कियों के साथ वह छुटपन से ही हरसिगार के फूल चुनता आया है। वाप की मार खाकर यही जगह है कि घंटों खड़े होकर माँ की याद में उसने आँसू बहाये हैं। यही जगह है कि चाची की अशेष सहानुभूति का अधिकृत उत्तराधिकारी की भाँति हृदय से उपभोग किया है।...

तब तक जयनाथ भी उठ जाते और अच्छी तरह पौ फटती फिर विहान हो जाता। पूर्वजों के खुदवाये हुए अपने उस छोटे पोखर की हल्का लहरों पर जब रतिनाथ बालरवि की किरणों को मचलते देखता, तो एक प्रकार की सिहरन से उसका रोम-रोम कंटकित हो उठता।

जयनाथ का उमानाथ की माँ पर तो ध्यान था ही, फिर भी तारा बाबा ने जो यंत्र दिया था, उसे उन्होंने तरकुलवा नहीं भेजा। लिफाफा में भेजने से यंत्र का प्रभाव घट जाता। शूद्र के द्वारा इसे भेजा जा नहीं सकता। अन्ततोगत्वा जयनाथ ने तय किया कि रत्ती को तरकुलवा भेज दें।

कुल्ली राउत का साथ कर दिया। यह खवास सत्तर साल का था। बात-चीत रंग-ढंग, और बनाव-देखाव ऐसा था कि अपरिचित लोगों को भ्रम हो जाता, यह ऊँची जाति का कोई आदमी है। उसे संस्कृत के कई स्तोत्र याद थे। जनेऊ का मंत्र वह जानता था और, कहते संकोच होता है, गायत्री भी उसे आती थी। संकोच इसलिये कि जिस गायत्री के लिये ब्राह्मण वटुकों का उपनयन संस्कार होता है, और जो सिर्फ द्विजों की चीज़ है उस महान प्रणव को एक शूद्र जान जाय। यह असह्य है। जाने कैसे उसने सीख ली थी। जयनाथ से इस

बात की किसी ने शिकायत की, तो वह फुफकार उठे—साले की चमड़ी उधेड़ लूँगा। शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे।

तरकुलवा के रास्ते पर दरभंगा महाराज का एक बड़ा सा पोखर पड़ता है। वहीं दोनों ने स्नान किया, रतिनाथ ने जल्दो-जल्दी संध्या की तो कुल्लीराउत ने टोका—बबुआ, तुम नीलमाधव उपाध्याय के बंशधर हो। फिर अपने कर्म-धर्म में इतनी हड़बड़ी क्यों दिखाते हो। कहीं कोई जान जायगा तो शुभंकरपुर की हँसी होगी।

रत्ती ने जवाब दिया—अरे, यहाँ कौन देखता है? देखना चलकर तरकुलवा में, घंटा भर नाक न दबाये रहा, तो जो कहो।

राउत ने मुस्कराकर कहा, लो, बाप का गुन सीख न गये! जयनाथ भी जब दूसरी जगह जाते हैं, तो चार-चार घंटे पूजा करते हैं।

रत्ती को बात लग गई। ऊपर से उसने कहा—चलो राउत, धूप कड़ी हो जायगी।

दोनों चले, परन्तु रास्ते भर रतिनाथ यही सोचता रहा कि राउत का कहना गैरवाजिव नहीं था। पिताजी अपने यहाँ तो पूजा-पाठ में आधा घंटा मुश्किल से ही लगाते हैं, मगर लोगों के सामने गप्पें खूब मारते हैं। क्यों किसी को ऐसा करना पड़ता है? रतिनाथ को कुल्ली-राउत बहुत ही चतुर, बहुत ही व्यावहारिक, और बहुत बड़ा ज्ञानी मालूम पड़ा। वह सोचने लगा—अगर यह भी ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ होता, तो निश्चय ही इसके बदन पर फटे-पुराने कपड़े न होते। हमारा जूटन खाकर, हमारा पहिरन पहनकर इनके बच्चे पलते हैं। उन्हें कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता। क्या मर्द, क्या औरत—इन लोगों का जीवन बड़ी जातिवालों की मेहरबानी पर निर्भर है...सोचते-सोचते रतिनाथ का दिमाग चकराने लगा तो तरकुलवा नज़दीक था। पूछने पर एक घर से आवाज़ आई—ग्वाले

का घर है। कुल्ली ने रत्ती से कहा—आ तो गये ही, वबुआ, ज़रा मुस्ता न लें ?

इम मुस्ताने की ओट में कुल्लीराउत के तमाखू पीने की इच्छा कामं कर रही थी। अन्दर से बुढ़िया निकली तो कुल्ली ने कहा—पीनी हमारे पास है, तुम हुक्का भरके ला दो।

और, आग नहीं चाहिए—मुस्कराकर बुढ़िया ने कहा। फिर उल्टे पंर आँगन चली गई। पीनी लेती गई थी।

हुक्का और चिलम जब आया तो राउत रतिनाथ को तरकुलवा का भूगोल बता रहे थे—पाँच कोस उत्तर नेपाल है। पूरव लौकहा थाना है, दक्खिन थाना फुलपरास पड़ता है। पच्छिम कमला मैया बहती हैं। ज़मीन बड़ी उपजाऊ है। दो-दो मन कट्टा धान उपजता है।

फिर तन्मय होकर राउत तमाखू पीने लगे। गुड़गुड़ाते-गुड़गुड़ाते जब जी भर गया, तो हुक्का बुढ़िया को थमा दिया।

चुम्मन भा का घर राउत को मालूम था। वह कई दफे भार लेकर तरकुलवा आया है। सीधे दोनों जयकिशोर बाबू के दालान पर पहुँचे। रतिनाथ आँगन चला गया। चाची पूरव की ओर वाले घर के ओसारे पर बैठी थी। आँख चार होते ही वह बोल उठीं—लाल भरे, इतनी कड़ी धूप में पैर तो तुम्हारे ज़रूर ही भरता हो गये होंगे ! साथ कौन आया है, राउत ?

हाँ—कहते हुए रत्ती ओसारे पर पहुँचा और चाची के पैर छुए। गौरी ने उसे छाती से लगा लिया और ठुड्डी छूती हुई बोली—हे भगवान् ! भूखे पेट इस जेठ में कैसे आया होगा !

रत्ती ने कहा—नहीं चाची, भूखा नहीं हूँ, चिउड़ा और आम साथ थे।

आँखें नचाकर चाची ने कहा—रहने भी दे, चिउड़ा और आम। पेट पाँजर से सटा जा रहा है, और भूखे नहीं हैं !

रत्ती ने देखा, आषाढ़ में जब पहले-पहल किसी दिन मूसलधार वर्षा होती है, तब जिस भाँति धरती का सद्यःस्नात रूप निखर आता है, उसी प्रकार चाची का शरीर लगता है। डेढ़ मास पहले चाची की शकल जैसे कुछ पीली-पीली लगती थी, अब वैसा रंग नहीं था। इस परिवर्तन का रहस्य उस किशोर का मन भला जान ही कैसे सकता था ! उसके लिए इतना काफी था कि बीमार होकर चाची तरकुलवा आई थी, और अब राहु-मुक्त चन्द्रकला की भाँति अपने स्वाभाविक स्वास्थ्य को फिर से उन्होंने पा लिया है।

लोटा भर ठंडा पानी लाकर अपने ही हाथ से चाची ने रत्ती के पैर धोये। अपने ही आँचल से उन्हें पोछा और कहा—राउत को भी पानी दे आओ, हाथ-पैर धोएँगे।

जबतक राउत को पानी देकर वह आया, तबतक इधर चाची ने फूल की उसी चमचमाती छिपली में खाना परोस रखा था। वह आया और फिर से पैर धोकर पीढ़े पर बैठ गया। खाने लगा तो चाची पंखा भूल रही थी। खाते-खाते रत्ती ने पूछा—क्यों चाची इस साल इधर आम की फसल कैसी है ?

पंखा के बेट से अपनी टुड्डी को टेककर चाची बोलीं—आठ आना समझो।

रतिनाथ की आँखें चमक उठीं। वह गुनगुनाया—फिर तो दस दिन रहने का मन करता है।

इतने में उसे भूली हुई कोई बात याद आई। खाते-खाते ही गौर से इधर-उधर नजरें घुमाईं और कहा—नानी को नहीं पाता हूँ।

पंखा भूलते हुए चाची ने कहा—रात में चोरो ने आम तोड़ लिये। मालदह के दो पेड़ साफ़ कर दिये, माँ वहीं गई है। जो कुछ बच रहे हैं, उनकी हिफाजत का इन्तजाम तो करना ही पड़ेगा।

रत्ती मचल उठा—खाने के बाद मैं भी वहीं जाऊँगा।

नहीं बेटा, जब ठंडा होगा, तब जाना, अभी बहुत धूप है। और, मैं तो राउत के सामने जाती नहीं। बूढ़े को ग्याना कौन खिलायेगा ?

वह इस दलील से चुप हो गया।

राउत को खिलाकर और दो ठुक्रड़े सुपारी देकर रत्ती अन्दर आया और जयकिशोर बाबू के पलंग पर चाची के साथ सो गया।

थोड़ा दिन वाकी रहा तो गौरी की माँ बाग से लौटी। रतिनाथ को देखकर बहुत खुश हुई। शाम को रत्ती और राउत बाग की ओर टहलने गये। बम्बई आम जा रहा था और मालदह का पकना शुरू हो गया था कि ऐन मौके पर चोरों ने धावा किया। फिर भी डेढ़-दो मौ बच रहे। दोनों ने घूम-फिरकर मारा बाग देखा। राउत की भी तबियत हुई कि दश दिन रहकर आमों का बहार लूटा जाय, मगर उसे अपने वे खेत याद आये, जो मड़ुआ रोपने के लिये तैयार पड़े थे।

राउत दो ही दिन तरकुलवा में रहा, फिर भी काफी आम उसे खाने को मिले। गौरी की माँ को खिलाने-पिलाने का बड़ा शौक था। स्वयम् विधवा होने के कारण वह निरामिषभोजी थीं, परन्तु आगन्तुकों के लिए दूर-दूर से मछलियाँ मँगवातीं, खसी पिठवातीं। यह ठीक है। क कुल्लीराउत के लिए तरकुलवा में कभी खसी नहीं पिठवाया गया, फिर भी उंमानाथ की नानी का स्वागत-सत्कार इस बूढ़े ग्वाम के लिए खाम आकर्षण रखता था। वह दो दिन रहा, और तीसरे दिन प्रातःकाल शुभंकरपुर के लिए खाना हो गया। चाची ने जयनाथ के लिए दश बम्बई और दश मालदह आम दिये थे।

समाज उन्हीं को दबाता है, जो गरीब होते हैं। शास्त्रकारा को बलि के लिए बकरे ही नजर आए। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नहीं सूझा। बड़े-बड़े दाँत और खूनी पंजे पंडितों के सामने थे, इसीलिए उधर से नजर फेरकर उन्होंने बेचारे बकरों का फतवा दे डाला।

गौरी की माँ समाज के लिए बाधिन थी। इतना बड़ा कुकांड हो जाने पर भी तरकुलवा में किसी ने गौरी की माँ को खुल्लम-खुल्ला कहा नहीं। गर्भ गिराने के ठीक ग्यारहवें दिन उसने सत्यनारायण की पूजा की। गाँव भर को आमंत्रित किया था। पाँच ही छः थे, जो नहीं आए। उनमें से तीन तो ऐसे थे जिनका इस घर से पुश्तैनी अन्नबन था। बाकी दो तीन ऐसे थे जिनका ख्याल था कि सिमरिया घाट जाकर प्रायश्चित्त कर लेने के उपरान्त ही सत्यनारायण की पूजा करवाना चाहिए था।

गौरी की माँ का कहना था कि बूँद भर गंगा जल में उतनी ही सामर्थ्य है जितनी कि सिमरिया घाट की गंगा में। यां कोई कहे तो मेरी बेटी पचीस बार गंगा नहा आने को तैयार है। गो-हत्या, ब्रह्म-हत्या का पाप तो इमने किया नहीं, फिर महज मामूली बीमारी के लिए किसी को इतना बड़ा दंड मैं कैसे दिलवाती ?

गरो-छुहाड़े और मुनक्के डलवा कर पंजीरा तैयार किया गया था। पुरोहित महाराज थे, बुढ़ऊ वैदिक नरेश ठाकुर। गुलाबी रंग में रँगी हुई दो धोतियाँ सत्यनारायण भगवान को चढ़ाई गई थीं। पीले रंग में रँगा हुआ तीन हाथ का एक अँगोछा। पुजारी बने थे शंकर बाबा। संकल्प कराते समय वैदिकजी ने जयकिशोर की माँ

से कहा—गौरी बिटिया से कहो, पुजारी के सामने आकर जरा बैठ जाय ।

स्वच्छ सफेद शान्तिपुरी धोती पहने गौरी सामने आई, तब संकल्प हुआ—ॐ अद्य ज्येष्ठे मासि शुक्ले पक्षे त्रयोदश्यां तिथौ निवृत्तरोगाया अस्याः श्री गौरी देव्याः सर्वाऽऽपत्ति प्रशमनार्थं सांग साऽयुध सवाहन सपरिवार श्री सत्यनारायण पूजनमहं करिष्यामि”

पूजन हुआ । कथा हुई । विसर्जन हुआ । फिर आमंत्रितों में प्रसाद बाटा गया । इस बीच में रह-रहकर ढोल, पिपिहिरी वाले गाते-बजाते रहे । छुँटकर पन्द्रह ब्राह्मणों को खाने का निमंत्रण दिया गया था, उन्हें खिलाया गया ।

गाँव की तीन-चार वृद्धाओं ने भी असहयोग कर दिया था । गौरी की माँ को किसी की परवाह नहीं थी । हाँ, बेटा का डर जरूर था । अभी जयकिशोर के आने में आठ-नौ दिन की देरी थी । उनके आने से पहले ही गौरी ने शुभंकरपुर लौटना चाहा । इस विचार से माँ भी सहमत हो गई ।

जेठ की पूर्णिमा को, रात के समय बैलगाड़ी पर रत्ती और चाची राजनगर स्टेशन की ओर चले । गाड़ीवान एक ग्वाला था । गाँव से बाहर आने पर रतिनाथ ने बाबा से कहा—स्टेशन बहुत दूर है, आइये आप भी चढ़ लीजिए । नहीं तो थक जायेंगे ।

दाँतों तले जीभ दबाकर बाबा ने गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाया—
उहँ !

रत्ती बाबा की ओर बकर-बकर ताकने लगा । अपने हाथ से उसका हाथ दबाकर गौरी ने कहा—बाबा, कभी बैलगाड़ी पर नहीं चढ़े । तुम्हारा गाँव कहने को तो पंडितों का गाँव है, किन्तु आँख-सुँह ढककर बड़े बूढ़े भी बैलगाड़ियों पर दूर-दूर तक हो आते हैं । तुम्हारे बाबा को भी मैंने एक बार बैलगाड़ी पर बैठे देखा था ।

रत्ती को बूढ़े बाबा के प्रति एक अजीब-सी श्रद्धा हो आई। वह बोला—तो चाची, कुछ दूर तक मुझे भी इन्हीं के साथ पैदल चलने दो।

पागल कहीं का ! चाची ने डाँटा—फूलकर पैर तुम्हा हो जाएँगे !

आखिर रत्ती ने नहीं माना। छुलाँग मारकर नीचे आ गया और शंकर बाबा के पीछे-पीछे चलभे लगा। थोड़ी दूर जाकर उसने मुँह खोला—क्यों बाबा, आप बैलगाड़ी पर क्यों नहीं चढ़ते ?

बाबा सुरती खाते थे। थूककर कहा—बच्चा, अब कोई इन बातों का विचार नहीं करता। बैल ठहरे शिवजी के वाहन। इनके चारों पैर धर्म के ही चार चरण हैं। इसीलिए ब्राह्मण न हल जोतते हैं, न गाड़ी चलाते हैं। चढ़ना भी मना है।

बाबा ने एक बार फिर थूका। रत्ती ने फिर पूछा—तो क्यों लोग चढ़ने लगे हैं ? हल नहीं न कोई जोतता है। बाबा ने चलते-चलते रतिनाथ का कन्धा पकड़ लिया और थोड़ा रुक गये। बोले—घोर कलियुग आ गया है, आज नहीं तो कल ब्राह्मण हल भी जोतेंगे। देख लेना। अँग्रेजी पढ़े-लिखे ब्राह्मण, सुना है, प्याज-लहसुन खाते हैं। मुर्गी का अंडा खाते हैं... इतना कहकर बाबा ने फिर थूक दिया।

गाड़ी चली जा रही थी, ढचर-ढचर-ढच। गौरी उसी पर लेटी पड़ी थी। आकाश से चाँद अमृत बरसा रहा था। हौले-हौले हवा चल रही थी। तारों को एक दूसरे से दूर-दूर देखकर उसे फिर एक बार अपने एकाकी जीवन का ख्याल आया। स्त्री और पुरुष, पुरुष और स्त्री। एक दूसरे के पूरक हैं। एक दूसरे से रहित कुछ नहीं हैं... इससे बाद गौरी को वह व्यक्ति याद आया कि जिसके हाथ में आज से बाईस साल पहले वैदिकजी ने यह हाथ धरा दिया था। फिर उसे नाना अभाव-अभियोग-ग्रस्त वह दाम्पत्य-जीवन याद आया जो इसी गाड़ी की भाँति ढचर-ढचर कुछ दिनों जैस-तैसे चलता रहा। इस गाड़ी के भी दो बैल बराबर नहीं हैं, और हमारी भी जोड़ी ऐसी

ही विषम थी... इसके बाद अपने हृदय-आकाश में अकस्मात् उग आने वाले उस स्वस्थ तरुण की याद आई, जिसे लोग जयनाथ कहते हैं—

तब गौरी ने रतिनाथ की ओर मुड़कर देखा। वह बाबा के साथ आहिस्ते-आहिस्ते चला आ रहा था। चाँदनी में उस किशोर का सुन्दर मुखमंडल चमक रहा था। मन हुआ कि आवाज देकर फिर उसे गाड़ी पर बैठा ले।

और सचमुच ही उसने आवाज दी—आओ, गाड़ी पर चढ़ जाओ।

रत्ती ने एतराज नहीं किया। चुपचाप आ बैठा। हिलती-डुलती उस गाड़ी पर थोड़ी देर बाद वह नींद के भकोरे खाने लगा और चाची के बदन पर उठंग गया। कुछ समय तक गौरी रतिनाथ की देह पर हाथ फेरती रही। उसे सहसा एक ख्याल आया। जयनाथ को धर-पकड़कर अगर किसी तरह दूसरी शादी कर लेने के लिए राजी कर लिया जाय, तो कैसा रहे? एक ही खतरा है कि सौतेली माँ इस लड़के को जिन्दगी भर परेशान करती रहेगी! अरे, क्या परेशान करेगी! मैं भी तो रहूँगी। रत्ती को अपने साथ रखूँगी, अपनी दुनिया लेकर जयनाथ और उनकी बीवी अलग रहें। दूसरा फायदा इससे यह होगा कि मुझ पर जयनाथ की लोलुप-दृष्टि नहीं पड़ेगी। नई नवेली सहचरी पाकर निश्चय है कि मेरी ओर से उनका मन खट्टा हो जायगा। तीसरा फायदा यह कि उतने बड़े आँगन में रात-बिरात मुझे अकेले रहना पड़ता है। एक साथिन मिलेगी

आधे रास्ते पर एक ओर बहुत ही चालू एक कुआँ पड़ता था। शंकर बाबा झटककर आगे जा चुके थे। उसी कुआँ पर बैठे मुस्ता रहे थे। गाड़ीवान को दूर से ही उन्होंने आवाज दी—रोकना हो ५ ५ ५

सड़क कुएँ से दो बीघा दूर थी। गाड़ीवान सोया हुआ था। बैल बेचारे लीक पकड़कर चले जा रहे थे। बाईं ओर जो जुता था, वह सिलेविया (सँवलिया) था दाईं ओर धौला। डील-डौल, चाल-ढाल, रंग-रूप, सभी दृष्टि से सिलेविया अव्वल था। उसकी तुलना में धौला काफी हल्का था। सिलेविया की गरदन में घन्टी बाँधी थी। उसकी टुनटुन-टन्-टन् उस नीरव निशीथ में अवश्य दूर-दूर तक प्रतिध्वनित होती होगी। बाबा की परिचित आवाज सुनकर बैल ठिठक गये ! हल्का सा दचका लगा तो गाड़ीवान को नींद टूट गई। गौरी और रतिनाथ भी जगे। सबने उतरकर पानी पिया, पेशाब की। कुछ देर तक खड़े रहने से बैलों को भी दम मारने की फुरसत मिली। उन्होंने भी मूता।

करीब आध घन्टा के बाद गाड़ी फिर चली।

दूर की नील निविड़ अमराइयों में से चुहचुहिया की आवाज आ रही थी। शंकर बाबा राह चलते ही सोते जा रहे थे। एक बार आँख भपकती तो दश डेग तक उसी हालत में चले जाते। वह देहात की कच्ची सड़क थी। राह के किनारे एक ओर तो गाड़ी की लोक थी, और दूसरी ओर पगडंडी। पगडंडी पर कहीं धूल कहीं चिकनी मिट्टी, और कहीं दूब ही दूब पड़ती थी। बाबा के पैरों की खुरदरी अँगुलियाँ दूब में उलझ जातीं, तो नेत्र खुल जाते। मिट्टी और धूल से तो पैरों को कोई डर था नहीं, इस स्थिति में चुह-चुहिया की मधुर आवाज ने बाबा को एक-दम जगा दिया और उन्होंने प्रभाती का तान छोड़ दिया—जागहु हो वृजराज, लाज मोर राखहु हो वृजराज . . .

स्टेशन करीब आ गया था। बाबा ने गाड़ीवान से कहा—अभी तक बैल अपने मन से चले हैं। अब जरा इनकी पीठ थपथपाओ। चाल तेज़ होगी, तो सम्भव है, सुबह वाली टेम (ट्रेन) मिल जाय। नहीं तो दिन भर राजनगर ही अगोरना पड़ेगा। तुम्हें क्या है, अभी लौट जाओगे !

गाड़ीवान ने कहा—तो बाबा तुम चलो भपटकर आगे । टिकट-उकट लेना ।

उसने शाबाशी देकर बैलों को ललकारना शुरू किया । वे सरपट दौड़ने लगे । उनकी जोड़ी ठीक रहती, तब तो खूब ही दौड़ सकते थे । थोड़ी ही देर में वैलगाड़ी राजनगर पहुँच गई, महाराजा के महलों के बगल से जाती हुई आगे उसने कमला का पुल पार किया कि बस स्टेशन ।

और ठीक ही उस दिन सुबह वाली गाड़ी घंटा भर लेट थी । अभी जयनगर से ही वह चली थी । जयनगर के बाद ग्वजौली और ग्वजौली के बाद राजनगर ।

शंकर बाबा, चाची और रत्ती प्लेटफार्म पर जा बैठे । सामान ज्यादा नहीं था । गाड़ीवान को उन लोगों ने छुट्टी दे दी थी । मगर उसने कहा—क्या है, पहर आध पहर देर हो होगी तो क्या है ? आप लोगों की गाड़ी जब छूट जायगी, तब मैं भी अपनी लड़िया हाँक दूँगा ।

शंकर बाबा ने दूसरी और तीसरी दफे पैटमैन से पूछकर मन को पक्का किया कि आधा घंटा और बाकी है । तब स्टेशन से बाहर निकलकर पुल के पार एक बाग में वह पहुँचे, और आम के तीन दलहन तोड़ लाए । नदी के किनारे बैठकर दांत साफ करने लगे और सोचा—बहुत दिन हो गये, कमला स्नान नहीं किया । आज तो हो नहीं सकेगा, लौटते समय, हे मैया, अवश्य मैं तुम्हारी धारा में दो डूब लगाऊँगा ।

इतने में टिकट कटाने की घन्टी बजी । जल्दी-जल्दी दलहन चूरकर बाबा ने जीभ साफ किया, और घाट के अन्दर घुटने भर पानी के अन्दर कुल्ला किया, आँख, मुँह धोये । फिर तीन बार अपने ऊपर हिमालय से निकली उस पुण्य सलिला का जल छिँटकर अपने को सिक्त किया ।

टिकट कटाया। दो पूरा और एक अर्द्ध। तब तक बंगाल-सार्थ-रेलवे की वह छोटी गाड़ी भी आ पहुँची। भीड़-भाड़ अधिक नहीं थी। तीनों चढ़ गए। इंजन ने खुस-खुस की आवाज़ की और चल पड़ी।

तारसराय में शंकर बाबा ने इक्का ठीक किया। इक्केवान ने उस पर बाँस के दो कैन लगाकर ऊपर से बड़ी-सी चादर डालकर ढ़म्बुआ बनाया। पर्दा का इन्तजाम हो जाने पर चाची इक्के पर बैठ गई। इधर का इक्का बनारस और इलाहाबाद के इक्के की तरह नहीं होता। वहाँ के इक्को पर छतरी होती है। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि पुराने जमाने के रथ का बिगड़ा हुआ आधुनिक नमूना ही हमारे सामने खड़ा है, लेकिन इधर के यह इक्के छतरीदार नहीं होते।

कच्ची सड़क पर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड वालों ने किसी जमाने में अपनी उदारता दिखलाई थी। वही रोड़ियाँ यातायात की आधुनिक सुविधा के नाम पर अपना रोना रो रही थीं—इक्का इतना हिलता-डुलता कि चाची ने वह सारा रास्ता आह-ऊह कहते हुए पार किया। बाबा और रत्ती बाते लड़ाते हुए पीछे आ रहे थे।

थोड़ी देर में वे शुभंकरपुर पहुँच गए।

—११—

दमयन्ती ने टोल-पड़ोस की प्रमुख और मुँहजोर औरतो को इकट्ठा किया। दुपहर के बाद का समय था। अपने-अपने परिवार को खिला-पिलाकर खुद खा-पीकर औरते जब निश्चिन्त होती हैं, तो ज्ञान-गोष्ठी का सबसे निर्विघ्न यही उनका समय होता है। एक दूसरे की सुख-दुख चर्चा। जो मौजूद न रही उसका छिद्रान्वेषण। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष। काशी, प्रयाग, गंगा, यमुना। और जान क्या-क्या।

आज की गोष्ठी में रामपुरवाली चाची, सन्नो की माँ, दम्नो फूफी, शकुन्तला और जनककिशोरी शामिल हुई थीं ।

दम्नो फूफी अपने भतीजे की मसकी हुई चादर में जाली मढ़ रही थी । रामपुरवाली चाची और सन्नो की माँ अपनी-अपनी तकली लिए आई थी । शकुन्तला को तकिया के खोल पर रंग-विरंगे सूतों से नक्कासी निकालना था । जनककिशोरी के नाखून जरा बड़े-बड़े थे, वह नहरनी लेती आई थी । रामपुरवाली चाची के साथ उसकी दश साल का लड़की वागो भी थी । वागो के हाथ में हनुमानचालीसा था ।

पीला धागा सुई में डालती हुई शकुन्तला ने कहा—दम्नो दीदी, दुपहर में तुम्हें सोने की आदत नहीं है ?

रामपुरवाली चाची ने अभी तक तकली चलाना आरम्भ नहीं किया था । वह पूनियाँ बना रही थीं । काम पर नजर रखकर ही वह बोलीं—खाकर तुरन्त सबको नींद नहीं आती । अपनी सुई रोककर दमयन्ती मुस्कराई—नींद का कोई ठिकाना नहीं !

जनककिशोरी वहीं मिट्टी पर नहरनी की धार ठीककर रही थी । उसने जब देखा कि सबसे मनोरंजक बात को छोड़कर ये लोग बहकी जा रही हैं, तो उससे नहीं रहा गया । वह बोली—उमानाथ की माँ नइहर से आई हैं । फूफी, तुम्हारे यहाँ भी आम भिजवाया होगा । इसका जवाब फूफी के बदले रामपुरवाली ने दिया । कहा—हमारे यहाँ भी मालदह के दो आम रत्ती देने आया था । लौटा दिया ।

दमयन्ती का चेहरा खिल उठा । वह अपनी बारीक सुई को चादर पर चला रही थी । प्रसन्नता से उँगली की गति रुक गई और वह बोली—उस भ्रष्ट औरत से भगवान हमें बचाये । इन आँखों के सामने वह न आवे, महादेव से मेरी यही प्रार्थना है । सन्नो की माँ तन्मय होकर अपनी तकली चला रही थी, 'किर' 'किर' 'किर' । अब उसका ध्यान भंग हुआ । ऊपरी मन से यह बातें वह सुन रही थी । टकुरीमें

हते सूत को लपेटती हुई वह बोली—आम लेने में क्या हर्ज है, हाँ, क्वान-क्वान होता तो बात दूसरी थी।

दमयन्ती सुलग उठी। उसकी भौहें तन गईं। वह सन्नो की माँ पर बरस पड़ी—सवाल यह आम और पक्वान का नहीं है।

शकुन्तला और जनककिशोरी ने अपना सिर हिलाकर इस बात का समर्थन किया। इससे उत्साहित होकर दमयन्ती दूने आंज से बोलने लगी—बात इतनी ही नहीं है सन्नो की माँ, देखना यह है कि पड़ोस के इस पाप का हमारे जीवन पर क्या असर पड़ता है। अपराधी को यदि दंड न मिले तो एक दिन भी संसार टिक नहीं सकता। उमानाथ की माँ अपने मायके जाकर पाक-साफ हो आई है। परन्तु शुभंकरपुर का नाम इससे कितना कलंकित हुआ है...

दम्नो फूफ़ी आवेश में आ गई। बागो के हाथ से छूटकर हनुमान-चलीसा जमीन पर गिर पड़ा। सन्नो की माँ ने कहा—तो अब उसका क्या होगा? इतना बड़ा कलंक क्या मामूली सजा है।

रामपुरवाली चाची चाहती थी कि दमयन्ती और बालें। तकली छोड़कर उसने सन्नो की माँ का हाथ पकड़ लिया। कहा—पूरा-पूरा कहने तो दो!

दमयन्ती कहती गई—अब और क्या होगा? मर्दों का तो कोई ठिकाना है नहीं। अगर हम न रहें, तो संसार से आचार-विचार हट जाय। उमानाथ की माँ व्यभिचारिणी है। पतिता है, भ्रष्टा है, कुलटा है, छिनाल है, उससे हमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। बोल-चाल बन्द। बात-विचार बन्द। प्रत्येक व्यवहार बन्द। हाँ, जयनाथ और रतिनाथ दोनों बाप-पूत यदि प्रायश्चित कर लें तो इस समाज में उनके लिए स्थान हो सकता है, परन्तु उमानाथ की माँ को समाज किसी भी हालत में क्षमा नहीं कर सकता।

रामपुरवाली ने कहा—बिल्कुल ठीक। अपराधी को सजा मिलनी ही चाहिये।

थाड़ी देर तक उस गोष्ठी पर सन्नाटा छाया रहा ।

निस्तब्धता को भंग करते हुए कोमल स्वर में दम्नो फूफी से जनककिशोरी ने पूछा—उमानाथ की माँ भी तो प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो सकती है ?

सन्नो की माँ ने जनककिशोरी की ओर देखा मानो यह कह रही हो कि तुम्हारी जिज्ञासा ठीक है । मैं भी यही जानना चाहती थी ।

उत्तर दिया दमयन्ती के बदले रामपुर वाली ने । वह बोली — प्रायश्चित्त की बातें तो कोई पंडित ही बता सकता है । इसमें किसी दूसरे के लिए रियायत थोड़े ही की जा सकेगी !

दम्नो ने चादर में जाली मढ़ने का अपना काम खतम कर दिया था । मुई को एक कागज में टाँचते हुए उसने कहा—रामपुर वाली की राय सही है, मुदा ग्वाली प्रायश्चित्त किसी काम का नहीं; जाति-विरादरी का दंड ही इस प्रकार के अपराधों को फिर से न दुहराने की दवा का काम करता है । सामाजिक बहिष्कार तो उमानाथ की माँ का हर हालत में करना पड़ेगा ।

सन्नो की माँ ने कहा—और इस बात का लेकर अगर गाँव में दो गोल हो जायँ ?

इस प्रश्न पर सभी थोड़ी देर तक चुप रहीं । मौन भंग किया रामपुरवाली ने । उसने कहा—भले ही तीन गोल हो जायँ, हमारा तो उमानाथ की माँ से किसी भी प्रकार का सम्पर्क न रहेगा !

दम्नो फूफी ने मौन रहकर अपनी स्वीकृति इस विचार पर दी ।

सन्नो की माँ उतनी मुँहजोर नहीं थी, जितनी कि समझदार । रामपुरवाली अपने पति की दूसरी स्त्री थी । भोला पंडित ने पुत्र की लालसा से पैतालीस साल की उम्र में यह दूसरी शादी की थी । पहली स्त्री भी अब तक मौजूद है । दोनों मुर्गियों की तरह आपस में लड़ती रहती थीं । रामपुरवाली को ही दुनिया विजयिनी मानती है । क्योंकि अपनी सौत को इसने ऐसी करारी हार दी कि वह बेचारी पाँच साल

से मायके में पड़ी है। यहाँ शुभंकरपुर के पाँच घरों के इस टोले में अब रामपुरवाली का एकच्छत्र राज है। भगड़ते-भगड़ते अन्त में गालियों के अपने जिन तीरों का वह इस्तेमाल करने लग जाती है, यहाँ उनका जिक्र न करना ही अच्छा है। एक बार भोला पंडित ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा था—पूर्व जन्म में कोई बहुत बड़ा प्रत्यवाय मैंने किया होगा, जिससे रामपुर में अवतार लेने वाली यह चड़ी मेरे घर आई। पंडित का जब बहुत गुस्सा चढ़ता है, तो भोटा पकड़कर चार लात देते हैं। और, भगवान की कृपा से ऐसे अक्सर इस दम्पति के जीवन में आते ही रहते हैं। बागो कोयले की खान का हीरा है। कम बोलना, स्निग्ध और स्थिर आँखों से देखते रहना, मुस्कान और सौन्दर्य। बागो का यही परिचय है।

जनककिशोरी और शकुन्तला। इन्द्रमार्ग की वही लड़कियाँ हैं, जिनका व्याह विकौआ से हुआ था। दोनों बहनों का स्वभाव तीव्र था। परन्तु बुद्धिमती होने से उनकी यह तीव्रता बात नहीं, काम से जाहिर होती थी। एक का अपने चचेरे भाई से, और दूसरे का कुल्ली राउत के जवान बेटे से गुप्त स्नेह-सम्बन्ध था। साल-डेढ़ साल पर विकौआ महाशय आ ही जाते। डेढ़-दो मास रहकर फिर चले जाते। शकुन्तला के तीन लड़के थे, और जनककिशोरी के एक लड़का और एक लड़की। शकुन्तला के पति की सात शादियाँ थीं। और जनककिशोरी के पति की दश। शकुन्तला का तीसरा लड़का हू-ब-हू उसके चचेरे भाई की शकल का था। जनककिशोरी की दोनों सन्तान आकृति में कुल्ली राउत की परम्परा में आती थी।

दम्भो के पिता की दो शादियाँ थीं। पहली शादी से एकमात्र यही दम्पत्यन्ती हुई। दूसरी से दो लड़के थे। पिता का नाम था विश्वनाथ झा। यह सभी लोग नीलमाधव उपाध्याय के ही वंशज थे। जयनाथ के पिता और विश्वनाथ चचेरे थे। तांत्रिक-साधना में दिलचस्पी लेने के कारण विश्वनाथ आजीवन रक्ताम्बरधारी रहे। बड़े-बड़े बाल-

बड़ी-बड़ी दाढ़ी। दीप्त और प्रशस्त ललाट, सिन्दूर का बड़ा-सा ठोप। लाल-सुर्ख धोती। लाल जनेऊ। हाथी के दाँत के तराशे हुए दानों की सुन्दर माला—विश्वनाथ का यह स्वरूप अब भी शुभंकरपुर में बहुतों को याद है। उन्हें लोग सिद्धजी-सिद्धजी कहते थे। अपनी दलती उमर में ग्वालियर और इन्दौर जाकर वह रुपये भी काफी बटोर लाये थे। अपनी बाल-बधवा पुत्री—दमयन्ती को उन्होंने आग्रहपूर्वक यहीं रख लिया। दमयन्ती के समुराल वाले उस कोटि के ब्राह्मण थे, जिन्हें अपनी परम्परा से चली आई मर्यादा का बहुत अधिक ख्याल रहता है, जिनके रग-रग में ब्रह्मवाद और आस्तिकता भरी रहती है, पूर्वजों की ज्ञान-निधि के संरक्षण में बड़ा-सा-बड़ा त्याग करते हुए जो हिचकते नहीं। जिनके साथ दमयन्ती का विवाह हुआ उनका नाम था वाचस्पति पाठक। न्याय और व्याकरण के अद्वितीय विद्वान् थे। छब्बीस साल की उमर में हैजे से उनका देहान्त हो गया। और तब से दम्नो अपने पितृ-कुल में रहती आई है। अपनी जायदाद का ताँसरा हिस्सा पिता उसके नाम चढ़ा गये हैं।

एक सम्मानित व्यक्ति की बुद्धिमती बेटी होने के नाते गाँव के सामाजिक जीवन में दमयन्ती का जो स्थान है, वह उपेक्षणीय नहीं है। समाजपतियों के कूटनीतिक शतरंज की वह भी एक खिलाड़िन है। उसकी पैनी सूझ का लोहा सभी मानते आये हैं।

इसलिए उमानाथ की माँ के सम्बन्ध में दम्नो फूफी का उक्त निर्णय बड़ा ही महत्त्व रखता था।

—१२—

रतिनाथ तेरह-चौदह दिन पर गाँव आया था।

देहात की पाठशाला और सो भी संस्कृत की। उसका बन्द रहना और न रहना बराबर है। अपने साथियों से मिलने की इच्छा रत्तो को

पाठशाला की ओर खींच ले गई। पहर भर दिन बाकी था। तीन ही चार लड़के थे। सरस्वती को प्रणाम करने के पश्चात् रतिनाथ ने पंडितजी के पैर छुए। वह उल्लसित होकर बोले—क्या रे, कहकर नहीं गया था ?

रत्ती की जबान बेधड़क होकर झूठ खेल गई—क्या करता, गुरुजी, पिताजी ने कहा। जाना ही पड़ा। बतला तो उन्होंने आपका दिया ही होगा।

गाय का पगहा टूट गया था। पंडितजी कुशासन पर बैठे हुए उसकी मरम्मत कर रहे थे। आगे सन पड़ा था। पगहा की नई गाँठ को दोनों हाथों की पूरी ताकत लगाकर पंडितजी कस रहे थे। बीच ही में बोल उठे—नहीं, तुम्हारे बाप ने मुझे यह सब नहीं बतलाया। हाँ, सत्तो से तुम्हारे तरकुलवा जाने की बात मालूम हुई थी...तब पंडितजी ने गौर से रत्ती की ओर देखा। और आँखें फाड़कर बोले—देखता हूँ, दश ही दिन की पहुनाई में तेरी शकल बदल गई है।

सत्तो मौजूद था। मुस्कराकर उसने कहा—हाँ, गुरुजी, बम्बई और मालदह इतना अधिक खा आया है कि साल भर बदन इसका लाल ही रहेगा।

रत्ती ने मटकी मारकर सत्तो की ओर देखा, फिर नजर नीचे कर ली।

पगहा की मरम्मत हो चुकी थी। कुछ मामूली-सा पढ़ा-वढ़ाकर पंडितजी शौच के लिए निकल गये। थोड़ी देर बाद रतिनाथ भी चला आया। कल ही से रत्ती का मन बागो से मिलने के लिए तरस रहा था। आज शाम को पाठशाला से लौटने के बाद वह अपने घर को ओर न जाकर भोला पंडित के दालान की ओर चला गया।

भोला पंडित का घर इन्द्रमणि के घर से कुछ उत्तर तरफ था। उसके दो तरफ खेत थे। पाँछे की ओर बाँस का जंगल था। रामपुर-

वाली चाची की कोख से बागों के अलावा एक और सन्तान पैदा हुई थी, लड़का। नौ महीने का होकर वह चल बसा। उसके बाद सन्तान होने का कोई लक्षण किसी को दिखाई नहीं पड़ा। भोला पंडित सत्तर की उमर टप गये थे। हड्डी इतनी भजवृत थी कि चौदह-चौदह, सोलह-सोलह घंटा अब भी खटते रहते। तेरहो अध्याय चंडी (दुर्गा सप्तशती) का पाठ रोज करते। कंठस्थ हो गया था सारा। मुवह उठकर, शौच से निवट चुकने के बाद उनका यह मनभन शुरू हो जाता। हाथ लगे रहते काम में और जीभ नाम में। दुनियादारी और जगदम्बा की स्तुति। इहलोक और परलोक। यह दोनों भोला पंडित साथ चलाते। इस बीच कोई मिलने वाला आता तो उससे एक प्रकार की अस्पष्ट भाषा में मतलब की बात भी कर लेते जैसे कि कोई आकर कहता—पंडितजी, आज दुपहर का निमंत्रण देता हूँ, तो पंडित पाठ छोड़कर उससे पूछ बैठते—झौड़ झौड़ डड्डेडा (कौन कौन रहेगा) और उनका ऐसा करना बिल्कुल दुरुस्त था, चंडी, गीता अथवा किसी अन्य धार्मिक ग्रन्थों का पारायण करते समय बीच-बीच में आप बात-चीत नहीं कर सकते। हाँ, संस्कृत की बात दूसरी है। वह ठहरी देवताओं की वाणी। उसका इस्तेमाल भले ही कोई कर ले। अनिवार्य आवश्यकता पड़ने पर समझदार लोग इसी झू-डा या ऊँ आँ-जैसी अव्यक्त ध्वनियों का सहारा लेते हैं।

भोला पंडित की दौड़-धूप का क्षेत्र चार जिलों तक विस्तृत था। दरभंगा, मुंगेर, भागलपुर और पूर्णिया। साल में एक बार तीन दिन के लिए वह वेतिया भी जाते थे। भिक्षा, आशीर्वाद, अनुष्ठान और रिश्तेदारी के सिलसिले में प्रति वर्ष चार-छः महीने उनके बाहर बीत जाते। राजा बहादुर दुर्गानन्दन सिंह से लेकर बनैली के राजा कीर्त्यानन्दसिंह तक भोला पंडित की शुभ कामनाओं के पात्र थे। भागलपुर का सबसे धनी मारवाड़ी उन दिनों रायबहादुर भोलीगम जयपुरिया था। वहाँ तक पंडित की पहुँच थी।

असमर्थ व्यक्तियों के प्रति इस ब्राह्मण के हृदय में असीम करुणा थी। कितने ही लूले, लँगड़े, अन्धे, अपाहिज और बूढ़े भोला पंडित की कृपा से अधखिली कलियों-जैसी बालिकाओं को गृह-लक्ष्मी के रूप में पाकर निहाल हो गये। एक-एक ब्याह में पचास-पचास रुपये पंडित के बँधे हुए थे। उमानाथ की बहन को भी इन्हीं महाशय ने पैंतालीस साल के एक महामूर्ख के चंगुल में डाल दिया था। इस तरह पचीसों लड़कियाँ आपका नाम लेकर दच्छिन-पच्छिम में करम कूट रही थीं। तारा बाबा का कहना था कि भोला पंडित ब्रह्मपिशाच होगा। पचीसों लड़कियाँ जिसके नाम पर रात-दिन आँसू बहायें उसका भला कैसे होगा ? दश-पाँच लड़कों को भी ठगने में पंडित ने सफलता पाई थी। किसी के पल्ले गूँगी पड़ी, तो किसी के पल्ले अंधी। किसी के पल्ले लँगड़ी पड़ी, तो किसी के पल्ले कुबड़ी।

परन्तु इससे क्या ? बाबा वैद्यनाथ प्रसन्न रहें, पंडित का कौन क्या कर लेगा ? वह साल साल कन्धे पर कामरू लेकर गंगा-जल भरकर पंदल ही देवघर पहुँचता है। बाबा पर जल ढालता है। कौन है ऐसा शुभंकरपुर में ?

बागो के बारे में रामपुरवाली चाची अभी से सतर्क था। डर था कि पंडित कहीं से किसी मसानवामी कापालिक को लाकर इस गौरी के साथ न उसे बैठा दें।

रतिनाथ को दरवाजे पर ही बागो से भेंट हो गई। नजर पड़ते ही लड़की ने मुँह फेर लिया। रत्ती नजदीक आया और बोला—कल दिन भर घर के काम में लगा रहा। आज सुबह चाची के काम से परसौनी गया था। दुपहर के बाद पाठशाला जाना पड़ा और अब जाकर कहीं फुरसत मिली है। भौहें तानकर बागो ने शिर हिलाया।

नहीं, अपनी कसम ! मैं बहानेबाजी नहीं करता—रत्ती ने कहा। लड़को ने लचक-से लड़के की कलाई पकड़ ली—बड़ी बुरा आदत है तुम्हारी, कुछ बात हुई नहीं कि अपनी कसम खा ली।

रत्ती ने बागो के चेहरे पर आँखें गड़ा दीं। थोड़ा रुककर बोला—
तुम मानती जो नहीं हो !

हाथ पकड़कर बागो रत्ती को खींचे आँगन ले गई। रामपुरवाली चाची किसी दूसरे के घर गई हुई थी। बागो ने एक पीढ़ा डाल दिया और इशारे से कहा—बैठ जाओ।

रतिनाथ चुपचाप बैठ गया और निर्निमेष बागो की ओर देखने लगा। चार-पाँच साल की पुरानी मित्रता थी, दोनों एक दूसरे को जी-जान से प्यार करते थे। दोनों ने साथ-साथ तालाब में तैरना सीखा था। आसिन के रात्रिशेष में उस बूढ़े हरसिंगार के नीचे खड़े होकर दोनों ने एक दूसरे के लिए फूल चुने थे। किसी रात हवा नहीं चलने से खिले फूल अपने-अपने वृन्तों से ही चिपके रह जाते। तब बागो सहारा देती और रतिनाथ उस पेड़ पर चढ़ जाता। छोटी-बड़ी डालों को हिलाकर नीचे उतर आता, फिर दोनों साथ फूल चुनने लगते। दोनों की डालियाँ जब भर जातीं, तो वे एक दूसरे पर चुने हुए फूल बिखेर देते। अपने बड़े-बड़े वालों में उलझे फूलों की ओर संकेत करती हुई बागो कहती—यह तुमने क्या किया ? कैसे ये भड़ेंगे ?

हँसकर रतिनाथ उत्तर देता—रहने भी दो। क्या बिगाड़ते हैं ?

भुँभुलाकर वह रत्ती की गरदन से लपेटे हुए गमछे का पल्ला पकड़ लेती—नहीं, मेरे वालों से एक-एक कर ये फूल तुम्हें हटाने होंगे।
नहीं तो ?

नहीं तो फिर कभी तुम्हारे साथ इस हरसिंगार के नीचे मैं नहीं आऊँगी।

तब, हरे काच की चार-चार चूड़ियोंवाले उन गोरे हाथों को अपने हाथों से रतिनाथ दबा देता और उसका शिर सूँघ लेता।

फिर विभोर होकर वह चुपचाप उसकी पीठ की तरफ हो लेता और वालों में से लगता फूल निकालने। दो-एक फूल जान-बूझकर छोड़

क्या बात है—खंभे से सटकर खड़ी हुई बागो बोली—क्या सोच रहे हो ?

रत्ती का समना टूट गया । चौँककर उसने कहा—कुछ तो नहीं । फिर दोनों टोल-पड़ोस के दूसरे लड़कों और लड़कियों की चर्चा में लग गये, अन्त में बागो ने दम्भो फूफी की उस ज्ञान-गोष्ठी का जिक्र किया, जिसमें वह खुद भी मौजूद थी । रत्ती इतना ही समझ सका कि उसकी चाची के खिलाफ लोग कुछ साजिश कर रहे हैं ।

कहीं से आये हुए दो पेड़ रखे पड़े थे । उनमें से एक बागो निकाल लाई और रत्ती के हाथ पर धर दिया । बोली—पानी लाती हूँ । पीकर जाना ।

तोड़-तोड़कर थोड़ा-थोड़ा वह पेड़ा खाने लगा । खाते-खाते सोच रहा था—चाची के बाद दूसरी कोई औरत मुझे मानती है तो यही बागो । कई बार ऐसा हुआ है कि रत्ती बाप के पैसे चुराकर कहीं से कुछ खा पी आया है । और, पीछे पिटाई के आतंक से चेहरा कुम्हला गया है, तो खोद-खोदकर इस लड़की ने चिन्ता का कारण मालूम कर लिया । फिर उतने पैसे अपनी माँ की डिविया में से लेकर रत्ती को दिया है । और उसने अपने बाप के बटुए में ज्यों के त्यों वे पैसे फिर से रख दिये हैं ।

अपने आँगन में पैर रखते ही रतिनाथ की निगाह पिता पर पड़ी । वह भाँग घोट रहे थे । चुनार के पत्थर की बनी हुई यह कुंडी जयनाथ विन्ध्याचल से लेते आये थे वह लाल पत्थर की थी । बड़ी मजबूत, वजन में तीन सेर की रही होगी । सोटा अमरूद का था । भोला पंडित की बगिया में अमरूद का एक पेड़ है । उसीकी पतला डाली काटकर जयनाथ ने भाँग घोटने का यह सोटा तैयार किया था । सदियों के तजुबों के बाद भंग-भक्तों की राय अब पक्की हो गई है कि अमरूद का सोटा धिमता कम है । भाँग पीसने के लिए बहुत ही उपयोगी होता है । आम, जामुन, कटहल वगैरह की डाली से तैयार

किया हुआ सोटा भुस-भुस धिमता है। वंभोले की बूटी छानने वाले इसीलिए अमरूद के सोटे का प्रशंसा करते थकते नहीं। जयनाथ कड़ी पत्ती का इस्तेमाल करते थे। गिनकर ग्यारह काली मिर्चें डालते, दां वादाम। चुटकी भर सौंफ। चीनी और गुड़ डालकर भाँग पीना उन्हें पसन्द नहीं था। वह कहते—यह साधका का चीज नहीं है। पर्व-त्योहार को नशाखोरी की नीयत से भाँग पीने वाले ऐसा भले कर लें, परन्तु विजया देवी के जो नित्य-सेवक हैं, उन्हें कड़वी भाँग ही प्रिय होती है।

रत्ती ने छिपाकर एक बार थोड़ी भाँग पी ली थी। बुरा हाल हो गया उसका। खाते समय मुँह के बदले कान में ही उसने भात के कौर डालने शुरू किये। जयनाथ ने पूछा—दाल में नमक तो ठीक है ? लड़के ने था ही मुँह चलाकर सिर हिला दिया। कन्धे पर कान से भात गिरते देख कर पिता ने समझा, लड़के ने भाँग खा ली है। बस, फिर क्या था ? रत्ती पर बड़ी पिटाई पड़ी। चाची ने आकर छुड़ा लिया था, नहीं तो उस रात पीट-पाटकर जयनाथ उसे दुम्बा* बना देते। उस वक्त नशे में चोट नहीं लगी, मगर अगले दिन रत्ती का बदन टूटा जा रहा था। चाची ने दो बार मालिश कर दी, तब जाकर दर्द हटा। मालिश के वक्त जयनाथ ने देखा तो दाँत पीसते हुए कहा—बेटीचोद ! फिर कभी भाँग तूने पी, तो कुल्हाड़ी से गरदन काट लूँगा। चाची ने जयनाथ को फटकारा, खुद जो पीते हो, भर भर लोटा। जयनाथ बरबराते हुए आँगन से बाहर हो गए कि मैं तो अभिमंत्रित करके पीता हूँ, उसमें नशा कम होता है।

जयनाथ तन्मय होकर भाँग घोट रहे थे ! रत्ती नजदीक आकर खड़ा हो गया।

*पंजाब-सरहद और काश्मीर में मोटा तगड़ा बकरा दुम्बा कहलाता है।

पिता ने पूछा—क्या चाहिए ?

कड़वा तेल नहीं है—पुत्र ने कहा । जयनाथ बोले—अभी उमानाथ की माँ से लेकर काम चला लेंगे, कल देखा जायगा ।

रत्ती की आवाज सुनकर चाची निकल आई । उपालंभ के स्वर में वह बोली—आज नाश्ता नहीं किया रे !

रतिनाथ ने निगाहें जमीन पर गड़ा लीं । चाची ने सिर से पैर तक उसकी ओर देखा । जरा रुककर बोली—तेरा खाना मैं ही बना रही हूँ ।

रत्ती चुप रहा । पिसी हुई भाँग के गोले का पानी से मिलाते हुए जयनाथ बोल उठे—तो इस गर्मी में अपने पेट के लिए चूल्हा के पास बैठकर मैं तपस्या क्यों करूँ ? पाव-डंढ़ पाव चिउड़ा घर में है ही, धिक्की आम का गाढ़ा रस और फुला हुआ चिउड़ा...जरा-सी कंसौजी...आहा ! हा !! इस दिव्य पदार्थ के आगे भात-दाल तरकारी गोबर है !

चाची से न रहा गया । वह बोली —रात दिन वही गोबर तो खाते-रहते हो ।

अरे गोबर, नहीं एक बात कही—जयनाथ ने कहा । जब परिश्रम किये बिना भी खाने की चीज़ मुलभ है, तो रसोई के भूँभट में वह पड़ते ही क्यों ?

कमलनाथ वैद्यनाथ और जयनाथ—जब तक माँ जीती रही, तीनों इकट्ठे रहे । उसके बाद अलग-विलग हो गए । जमीन जायदाद बरतन, वासन सभी के तीन खरे हुए । चूल्हे भी तीन । कमलनाथ यहाँ थे नहीं । रह गये वैद्यनाथ और जयनाथ । यह दोनों भी अलग-विलग थे । वैद्यनाथ की मृत्यु के बाद जब रत्ती की माँ मरी तो बेचारे जयनाथ की गृहस्थी छिन्न-भिन्न हो गई । या तो वह पहले ही से गई-गुजरी थी, क्योंकि जयनाथ ठिकाने से कभी शुभंकरपुर नहीं रहे । उनकी सारी जवानी कटी थी भागलपुर से बाईस कोस दक्षिण

बड़हड़वा में। वहाँ इन लोगों की बड़ी बहन सुमित्रा की समुराल थी। इसकी भी एक कहानी है। आज से चालीस साल पहले रुपया ही मँहगा थी, चीजें खूब सस्ती थी। मेवालाल ठाकुर बड़हड़वा के बहुत बड़े काश्तकार थे। पचास वर्ष की उमर में उन पर यह सनक सवार हुई कि किसी कुलीन कन्या का पाणिग्रहण करना चाहिये। दो शादियाँ इससे पहले की थीं। वह दोनों औरतें मौजूद थीं। उनमें से एक के चार और दूसरी के सात सन्तानें थीं। जयनाथ के पिता को अपने एक मित्र से मेवालाल की यह इच्छा मालूम हुई। यह जानकर कि बड़हड़वा वाले बहुत ही धनी हैं और धूमधाम से शादी करेंगे, उन्होंने निश्चय किया कि अपनी कन्या सुमित्रा का ब्याह उधर ही कर देंगे, तदनुसार बात-चीत शुरू हो गई और सम्बन्ध स्थिर हो गया। रानी छाप के दो सौ नगद रुपये, सौ मन कनकजीर चावल, पन्द्रह मन अरहर की दाल, दो मन घी, पाँच थान ननगिलाट (लॉग क्लॉथ) इतना सामान लेकर मेवालाल ठाकुर शुभंकरपुर आये थे शादी करने। बारात में कुल चार आदमी थे। एक खवास था, गरीब ब्राह्मण के घर को ठाकुरजी ने भर दिया। गहनों से सुमित्रा लद गई। खान्दान के पाँचों घर की औरतों को एक-एक बिसहत्थी साड़ी मिली थी। कुल्लीराउत को दो धोतियाँ। उसकी घरवाली को दश हाथ की साड़ी! लः महीने बाद ही गौना हुआ। भाइयों में जयनाथ ही छोटे थे। वही साथ गये। पहली यात्रा में वह साल भर बड़हड़वा रह आये। दूध, दही, घी, मछली-मांस—इनकी प्रचुरता ने जयनाथ के मन और तन दोनों पर प्रभाव डाला। वह सदा के लिए अपने बहनोई के यहाँ रहने को तैयार थे। अपनी शादी और गौने के बाद भी जयनाथ का मन घर पर नहीं लगता था। वह भाग-भागकर बड़हड़वा पहुँच जाते। टट्टू और गधे को खोल दीजिये, वह उसी मैदान की ओर पिछली दो टाँगों के बल पर रुक-रुककर कूदता हुआ पहुँच जायगा जिसकी हरी-हरी मुलायम दूबों का स्वाद उसे भली-

भाँति मालूम है। यही हाल था जयनाथ का। बड़हड़वा उनके लिए हरी घास का अक्षय मैदान था। फिर अपनी सारी जवानी अगर उन्होंने दक्षिण भागलपुर के उस देहात में बिता दी, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ! ठाकुरजी की विधवा भावज वहाँ जयनाथ के लिए जान देती थी। खेत की मजूरियों से हँसी-मखौल करने का जयनाथ को अवा . अधिकार था। विशाल वटवृक्ष की छाया में दस-पाँच गायों के बीच खड़े होकर साँड़ जैसे आँखें मूँदे जुगाली करता रहता है, वही स्थिति थी जयनाथ की।

यही बात थी कि गृहस्थी में कभी जयनाथ का मन नहीं लगा। रत्ती की माँ मर गई, तब से उमानाथ की माँ ने अपने देवर की दूटी गृहस्थी को सँभालने की बराबर ही चेष्टा की है।

अलगाव-बिलगाव की वह मोटी दीवाल बहुत कुछ ढह चुकी थी। नाम मात्र को दो चूल्हे थे। खाना बहुधा साथ ही बनता। और जयनाथ जब बाहर रहते तब तो रत्ती रात-दिन चाची के ही घर में आसन जमाये रहता; आँगन के दक्षिण ओर अपना बन्द घर उस लड़के का ध्यान शायद ही कभी आकर्षित करता।

भाँग पीकर जयनाथ बलुआहा पोखर की ओर निकल गये और रत्ती चाची के घर में घुसा। खाना तैयार होने में कुछ देर थी।

—१३—

ठीक दीवाली के दिन वैद्यनाथ की वर्षा पड़ती थी। इस अवसर पर उमानाथ घर आता। कम से कम पाँच ब्राह्मण जिंवाये जाते। किसी-किसी वर्ष यह संख्या, सात और नौ तक पहुँच जाती। प्रथा यह है कि पाँच वर्षों तक कम से कम ग्यारह व्यक्तियों को निमंत्रण दिया जाय। उसके बाद आप स्वतंत्र हैं।

परन्तु इस वर्ष तो समस्या ही दूसरी थी ! कौन खायेगा उमानाथ के घर ? सभी ने उसकी माँ को समाज से बहिष्कृत कर दिया है ।

उमानाथ दुर्गा-पूजा की छुट्टी में हमेशा आता और दीवाली के दिन बाप की वर्षा करके फौरन चल देता, बहन के यहाँ । कार्तिक शुक्ल द्वितीया उन व्यक्तियों के लिए एक महत्वपूर्ण तिथि है कि जिनकी बहन जोवित हों । भाई-दूज का यह त्यौहार उमानाथ के लिए बचपन से ही आनन्द और उत्सव का दिन रहा है । व्याहकर दूर चली जाने पर भी प्रतिभामा प्रतिवर्ष अपने भाई को इस त्यौहार के अवसर पर बुलवाती ही । उमानाथ जब से भागलपुर रहने लगा तब से तो आग्रह और भी अधिक हो गया ।

इस बार दुर्गा-पूजा की छुट्टी में, कलश-स्थापन (नवरात्रि के आरम्भ का दिन—आश्विन शुक्ल, प्रतिपदा) से दो रोज पहले उमानाथ घर पहुँचा । घर पहुँचने पर थोड़ी ही देर बाद अपनी माँ के सम्बन्ध में सारी बात जब उसे मालूम हुई, तो ग्लानि और क्षोभ के मारे उसका दिमाग फटने लगा । और, उससे यह सब कहा किसने ? दम्नो बुआ ने ।

आँखों में आँसू भरकर विषाद की फीकी छाया चेहरे पर लाकर फूफी ने उमानाथ से कहा था—बबुआ, तेरी माँ ऐसी कुलबोरनी निकलेगी, इस बात का जरा भी पता पहले हाता, तो कभी मैं वैद्यनाथ की शादी तरकुलवा में नहीं हाने देती । सोचो तो, नीलमाधव उपाध्याय का यह विमल वंश कितना प्रसिद्ध है ! और, एक विधवा.....इतना कहते-कहते उन बनावटी आसुओं को आँचल के खूँट से दमयन्ती ने पोंछ लिया और हाथ पकड़कर उमानाथ को अपने दरवाजे की भीत के ओट में ले गई ।

उमानाथ फुफकारता हुआ अपने आँगन में आया और माँ का झोंटा पकड़ लिया । वह बेचारी इस आकस्मिक आक्रमण से चकित थी ही कि इसी बीच लड़के ने उसकी पीठ पर आठ-दश लात गदागद जमा

दिये। चाची ऐंच कर रह गई। उसे यह समझते देर न लगी कि दमयन्ती ने उमानाथ के कान भरे हैं।

अपने आँसू, अपनी आह—चाची सब पी गई।

पति, पुत्र या परिपालक के द्वारा पीटी जाने पर जो औरत न रोये, न चिल्लाये और न आह-ऊह करे, तो क्या होगा? होगा यही कि पीटनेवाले का क्रोध क्रोध के रूप में बदल जायगा। तब अपना कपार आप ही वह पीट लेगा.....

उमानाथ का मन न भरा। दौत पीमता हुआ वह बोला—रान्नीस की कहीं की! ले, रख अपना घर। मैं जाता हूँ, तालाब में डूबने और, तब तू मौज मारती रहना.....

उठकर चटसे चाची ने उमानाथ के पैर छान लिए।

लड़का चिल्लाया—नहीं, नहीं, जीकर मैं क्या करूँगा। गले में घड़ा बाँधकर डूब मरूँगा, तभी मुझे शान्ति मिलेगी।

नहीं भैया—लड़के के पैरों पर अपना मुक्त-कुन्तल मस्तक डालकर माँ गिड़गिड़ाई—नहीं भैया, कोने में कुल्हाड़ा रखा है, उठा लाओ, मुझे खण्ड-खण्ड कर दो। मैं खुद इसीलिए नहीं डूब मरी कि तुम्हारे हाथों से सद्गति मिलेगी तो मेरे सारे कुकर्म धुल जाएँगे।

माँ के बाहु-पाश से अपने पैर छुड़ा कर वह अलग हो गया और बीच घर में बैठकर फूट-फूटकर रोने लगा। माँ की आँखें भी आँसू से तर थीं। वह उठी। लड़के के बिल्कुल करीब जाकर बैठ गई। आँचल के खूँट से उसके आँसू पोंछने लगी परन्तु आज उमानाथ का हृदय गर्मी की गंगोत्री बन गया था। तपविगलित हिमानी प्रखर स्रोत की भूमिका बनकर जब वह निकलती है, तो मैदान की गंगा अपने दोनों तटों को आग्लावित करती हुई बहती चली जाती है।

बहुत देर तक उमानाथ सोता रहा, माँ पास ही बैठी बराबर उसके आँसू पोंछती रही। पाठशाला से रतिनाथ आ गया, तब जाकर वह उठा और लोटा में पानी लेकर आँख-मुँह धो आया।

रत्ती को साहस नहीं हुआ कि चाची से कुछ पूछें।

यह सब तो हुआ, किन्तु निमन्त्रण देने पर वर्षी के दिन कोई खाने नहीं आया। मूर्ख और मन्दबुद्धि रहने पर भी उमानाथ होनहार को बलवान तो मानता ही था। अपनी अपराधिनी माँ को क्षमा कर के उसे फिर कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। दीवाली के दिन ही वह भागलपुर के लिए रवाना हो गया।

—१४—

दुर्गा पूजा के दसों दिन जयनाथ ने विन्ध्याचल में बिताये। एक मारवाड़ी ने चंडी का सम्पुट पाठ करवाया था। पाठ करने वाले नौ थे। पच्चीस-पच्चीस की दक्षिणा मिली थी। एक-एक जोड़ा धोती। दसों दिन फलाहार का इन्तजाम था। शाम को गंगा के किनारे पंडे टंडई छानते। वहीं जयनाथ भी अपनी कुंडी और सोटा लेकर एक ओर बैठ जाते। पाठ करने वालों में से चार मैथिल थे और पाँच सरयूपारी। सेठ था कलकत्ते का, मगर प्रबन्ध में मिर्जापुर के हरिहर पंडे का हाथ था। सेठ के लड़के को लड़का नहीं हो रहा था। इसीलिए भगवती विन्ध्यवासिनी की आराधना वह करवा रहा था। हरिहर पंडा से जयनाथ का पहले से ही परिचय था। खत लिखकर उसने जयनाथ को इस बार बुलाया था। शर्त यह थी कि अपनी दक्षिणा में से पाँच रुपया पंडा को देना पड़ेगा। सभी से पाँच-पाँच उसने लिए थे। सेठ से एक मुश्त पाँच सौ लिया था।

दीवाली के बाद जयनाथ प्रयाग चले गये। वहाँ बेतिया की महारानी रहती थी। पागल करार देकर उसका राज सरकार ने कोरट

में ले लिया था। सालाना डेढ़ लाख रुपया उसे खर्च के लिए मिलता था। इलाहाबाद में एक बड़ा-सा बँगला लेकर अपने अमले और नौकर-चाकर के साथ रहती थीं।

बेतिया की महारानी के यहाँ पूजा-पाठ, अनुष्ठान जप और ध्यान का कुछ न कुछ सिलसिला लगा ही रहता। रुद्रधर मिश्र पुजारी के तौर पर रानी के यहाँ रहते थे। इस बार विजयादशमी के दिन महारानी भगवती का दर्शन करने विन्ध्याचल गईं, तो मिश्रजी भी साथ थे। वहीं जयनाथ का मिश्रजी से परिचय हुआ और वही परिचय जयनाथ को प्रयाग खींच लाया। एक मास महामृत्युंजय का जप करके चालीस रुपया दक्षिणा पाई। भोजन का प्रबन्ध तो खैर अलग से था ही।

प्रयाग से जयनाथ काशा आ गये।

काशी बहुत ही विलक्षण और बड़ा ही विचित्र स्थान है। ऐसा लगता है, मानो हिन्दुत्व और भारतीयता के सारे गुण और सारे दुर्गुण यहाँ बाबा विश्वनाथ की शरण में दुबके पड़े हैं। इससे पहले भी जयनाथ दो बार काशी आ चुके थे। बनैली के राजा पद्मानन्दसिंह की रानी पद्मावती ने नेपाली खपड़ा मुहल्ले में तारा भगवती का एक मन्दिर बनवाया। भोग-राग के लिए लाख रुपये की तहसील भगवती के नाम ट्रस्ट कर गई। गरीब विद्यार्थी और काशीवाम की इच्छा से आनेवाले बूढ़े पचासों की तादाद में वहाँ नित्य भोजन पाते। परन्तु यह सुविधा केवल मैथिल ब्राह्मणों के ही लिए थी। मन्दिर के मैनेजर से जयनाथ का दूर की रिश्तेदारी का लपेट था। इसलिए चाहे जितने दिन काशीवासी बनकर वह तारा भगवती का प्रसाद पा सकते थे। फिर भी होली तक ही रहे। साढ़े तीन महीने के इस काशीवास की स्मृतियाँ जयनाथ को जीवन भर न भूलेंगी। यह अनुताप कि पंडित नहीं बना, उनके हृदय में काशी रहते समय और भी तीव्र, और भी असह्य हो उठा। बड़े-बड़े पंडितों को गंगा में तख्त पर बैठे त्रिपं,

किये जप में लीन देखते ता जयनाथ सोचने लगते—यह अगर पच्छिम की ओर निकल जायँ, तो सौ सौ रुपये का मासिक वेतन पायें। परन्तु विद्या भी विजया की तरह एक मादक वस्तु है। तभी तो पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस रुपये लेकर जिन्दगी भर ये लोग काशी में ही पढ़ाते रह जाते हैं। जयनाथ को अपने देश के महामहोपाध्याय भवनाथ मिश्र का नाम याद आया, जिन्हें लोग अयाची कहते थे। वह जीवन भर किसी से कुछ माँगने नहीं गये। अपनी कुटिया में बैठकर विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे।

इन बातों से रह-रहकर जयनाथ को अपनी मूर्खता खलती और आहत मन को वहलाने के लिए वह कचौड़ी गली, कुंजगली, ठठेरी बाजार, चौक और दशाश्वमेध की राह लेते। यदा-कदा परिचितों की निगाह बचाकर दालमंडी का भी चक्कर लगा आते। राँड़, साँड़, सोढ़ी, सन्यासी, इनसे बचे तो सेवै काशी। सो, बेचारे जयनाथ भा आखिर उलझ ही गये। विश्वनाथ और अन्नपूर्णा की पूजा कर चुकने पर लोग दुर्गिराज पर जल चढ़ाने जाते हैं। वहाँ से दंडपाणि। दंडपाणिवाली गली में चूड़ियों की कई दूकानें हैं। एक दिन जयनाथ ने देखा कि दो विधवायें वहाँ एक दूकान पर मैथिली बोली में चूड़ियों का मोल-भाव कर रही हैं। जयनाथ के कन्धे पर भीगी धोती थी, हाथ में लोटा था। जल चढ़ाकर आ रहे थे। अपनी मातृ-भाषा में विधवाओं को बोलते पाकर वह ठिठक गये। बाद में जिधर वे चलीं, वह भी उधर ही हो लिए। जाते-जाते मणिकर्णिका घाट के पास ऊपर एक गली में एक मकान के अन्दर वे घुसीं। उस मकान की दीवाल पर किसी ने गेरू से लिख दिया था—मैथिल विधवा-निवास। साहस हुआ, अन्दर गये। एक बुढ़िया नल के पास कपड़ा फीच रही थी। उसने देखते ही पूछा—किसे ढूँढ़ते हो ?

शुभंकरपुर की एक मुसम्मात यहाँ रहती है। उससे ही मिलने आया हूँ।

बुढ़िया ने सिर हिलाकर कहा—ना, नां, शुभंकरपुर की तो कोई नहीं है यहाँ ।

इतने में उन्हीं दो में से एक विधवा ने ऊपर से झाँककर देखा और पूछा—आप कहाँ के रहनेवाले हैं ?

शुभंकरपुर के—जयनाथ ने कहा ।

ऊपर से आवाज आई—ठहरिये...सीढ़ियों से धमधम करते दो हल्के पैर नीचे उतर आये । नजदीक आकर उस विधवा ने माथे पर का कपड़ा ठीक किया और बोली—मैं परसौनी की रहनेवाली हूँ । शुभंकरपुर और परसौनी दोनों पड़ोसी हैं ।

जयनाथ बरबस मुस्कुरा पड़े—तो हम और आप पड़ोसी हुए ।

बिना किसी संकोच के चट से उस औरत ने कहा—इसमें भी क्या कुछ सन्देह है ?...थोड़ा रुककर वह फिर बोली—ऊपर चालिये, हमारी कोठरी को अपनी चरण धूलि से—

जयनाथ ने टोका—प्रतिदिन भोरे-भोर जहाँ की गलियाँ भाड़-बुहार कर साफ कर ली जाती हैं, वहाँ भला चरण-धूल ?

धूल न सही, चरण तो पड़ेंगे !—विधवा ने कहा—और सीढ़ियों पर से चढ़कर ऊपर चलने का संकेत किया ।

चार महीने हो गये थे, जयनाथ को घर छोड़े । इतने दिनों पर नजदीक से एक स्त्री का मुँह देखकर और उस मुँह से निकली बातें सीधे अपने कानों से सुनकर उसका मन प्रसन्न हो गया ।

दुतल्ले पर पहुँचकर पूर्व की ओर एक छोटी कोठरी के पास वह औरत रुक गई । मुड़कर जयनाथ की ओर देखा और बोली—इस मकान का किराया अपने ही जिले के एक श्रीमान् देते हैं । हम विधवाओं पर उनकी विशेष कृपा रहती है ! और आप देखते ही हैं, इस मकान में कमरा दो ही एक है । तीन तल्लों में कुल मिलाकर पाँच ही सात कोठरियाँ हैं, बाकी बरंडा ही बरंडा है ।

चारों ओर नजर घुमाकर जयनाथ ने उस मकान को देखा ।

ख्याल में आया—वह कौन श्रीमान हैं, इन विधवाओं के प्रति जिनके हृदय में करुणा का यह उद्रेक हुआ है ?

कुश का आसन विल्लाते हुए विधवा ने बैठने का इशारा किया और बोली—लोटा रख दीजिए और धोती दीजिए इधर । सूखते क्या देर लगे ?

जयनाथ ने कहा—बैठने को तो थोड़ा मैं बैठ लेता हूँ, मगर तारा मन्दिर में ठीक ग्यारह बजे भोजन की घन्टी बजती है ।

आसमान की ओर दृष्टि डालकर वह विधवा बोली—दस भी न बजे होंगे । तब तक यह गीली धोती क्या आप कन्धे पर ही लिए रहेंगे ?

जयनाथ ने कन्धे से उठाकर वह गीली धोती उसे थमा दी ।

संसार का जयनाथ को जो थोड़ा-बहुत ज्ञान था, तदनुसार यह विधवा उसे उन विधवाओं से विलक्षण भालूम हो रही थी जिन्हें शुभंकरपुर, वड़हरवा या कहीं और देखा था । चौड़े पाद की सफेद साड़ी वह पहने थी । गले में चाँदी की तीन सिकड़ियाँ भूल रही थीं । भ्रमर-कुंचित-केश और खिला हुआ चेहरा देखकर ऐसा लगता था कि इस जीवन को वह उपेक्षा के योग्य नहीं समझती ।

तब तक वरामदे की खूंटियों पर वह धोती डाल आई और कोठरी के अन्दर जाकर एक दोने में चार पेंडे लाकर जयनाथ के सामने धर दिये । कहा —अभी तक आपने पानी नहीं पिया होगा ।

जयनाथ से 'न' कहते नहीं बना । उन्होंने अपने को समझाया—मिट्टी की ओर सभी खिंचते हैं । मेरी इसकी कोई जान-पहचान तो थी नहीं । शुभंकरपुर का नाम सुनकर इसे अपनी मातृ-भूमि परसौनी याद आई । पास-पड़ोस का होना ही इस खिंचाव और इस तनाव का कारण है...जयनाथ भी चार महीने से प्रवासी-जीवन बिता रहा था । एकाएक यों पड़ोस के आदमी से भेंट हो जाना कितना बड़ा सौभाग्य है !

उसे साहस नहीं हो रहा था कि प्रथम परिचय के इन क्षणों में ही नाम, कुल, जीविका आदि पूछकर मालूम कर लें।

पेड़ा खाकर पानी पीकर वह निवृत्त हुआ, तब तक पान के दो बीड़ सामने आ गये। विधवा और मगही पान ! जयनाथ की आँख कपार तक फैल गई ! पान खाकर उसने कहा—धोती मैं आकर फिर ले जाऊँगा, अभी जाने दीजिये।

स्त्री ने निषेध-मुद्रा में हाथ उठाकर कहा—अब आठ बजे रात से पहले मैं नहीं मिलूँगी। एक खत्री के तीन बच्चे हैं। औरत उसकी पिछले साल चल बसी। उन अबोध बच्चों की मैं ही देख-भाल करती हूँ।

मन ही मन जयनाथ बोले—तभी तो ! अब बात समझ में आई।

मेरा नाम सुशीला है। धोती आपकी थोड़ी देर बाद पहुँच जायगी, उसकी चिन्ता न करें, विधवा ने कहा।

उस समय तो जयनाथ चले आए, मगर सुशीला उनके हृदय कमल पर मानों वज्रासन मारकर बैठ गई।

तारा मन्दिर में जयनाथ के ननिहाल की एक वृद्धा चावल फटकने का काम करती थी। अवसर पाकर सुशीला के बारे में जयनाथ ने कुछ बातें मालूम कीं। वह सचमुच परसौनी की ही रहने वाली थी। बाल-विधवा हो जाने के बाद जेठानी और ननद के दुर्व्यवहार से तंग आकर नैहर रहने लगी। वहाँ भाभी से खट-पट हुई, तो भागकर काशी आ गई। पहले एक घाटिया महाराज के पल्ले पड़ी, और अब उस खत्री दूकानदार के घर की मलिकाइन बनी हुई है। खूब चुगती है, खूब छितराती है। भाई और चाचा आते हैं, तो उन्हें भी काफी दे दिवाकर बिदा करती है।.....सुशीला की यह गुण गाथा सुनकर जयनाथ ने उसके प्रति और भी आकर्षण अनुभव किया। वह तीसरे-चौथे दिन पर सुशीला के यहाँ पहुँचने लगे। सम्पर्क बढ़ता

गया तो इससे क्या ? उस विधवा ने अपने व्यक्तित्व को सदैव जयनाथ की कोरी भावुकताओं से ऊपर रखा । एक दिन, रात को वह उन्हें सिनेमा दिखाने ले गई । भागलपुर और इलाहाबाद में जयनाथ सिनेमा पच्चीसों बार देख चुके थे, लेकिन ऐसी अद्भुत साधिन तो उन्हें कभी नहीं मिली । एक-बार पंच गंगा घाट पर बैठे-बैठे सुशीला ने कहा—बहता पानी ही धार कहलाता है । देखो सुबह-शाम हजारों आदमी नहाने आते हैं । मगर तुम जिस जाति में, जिस समाज में पैदा हुए हो, वह जिन्दा नहीं, मुर्दा धार है, वह छाड़न है । फिर भी मिथिला की उस मिट्टी का मुझे बहुत ही मोह है । उस धनी सज्जन का नाम मैं तुम्हें नहीं बताना चाहती कि जिसका हृदय हम विधवाओं के प्रति करुणामय है । इतना करुणामय कि तीन-तीन विवाहिताएँ और पाँच-पाँच रखोलियाँ रहते हुए भी चूड़ियाँ से सूनी कलाई की ओर ललचाई निगाह से देखा करता है । ताड़ी पीने वाले को तुमने अवश्य देखा होगा, मेरा भी वही हाल है । मैं प्रज्वलित अग्नि-कुंड हूँ जो जितनी ही स्निग्ध समिधाएँ पाता है, उतना ही निधूम, उतना ही निटुर होता जाता है ।

जयनाथ समझदार जरूर था, मगर सुशीला की जलन को भली-भाँति समझ सका, इसमें सन्देह है । वह जब आवेश में आती तो लगाती सिगरेट पर सिगरेट फूँकने । एक दिन उसे कीमती चूड़ियाँ पहने देख कर जयनाथ दंग रह गया था, और इस पर क्या कहा था सुशीला ने ? कहा यही था कि मेरे जितने मित्र बनते हैं, उतनी बार मैं चूड़ियाँ पहनती हूँ, और फोड़ती हूँ ।

—१५—

पंडित कालीचरन की स्त्री और सन्नों की माँ ने अब चाची से मिलना-जुलना आरम्भ कर दिया था । और लोगों का भी रुख बदल

रहा था। कर्ज, घाव का निशान और बदनामी—यह तीन ऐसी बातें हैं जो आहिंस्ते-आहिंस्ते मिट जाती हैं। चाची के भी कलंक का अब लोग भूलने लगे थे। और शुभंकरपुर जैसे प्रतिष्ठित गाँव में हर छः माह पर किसी न किसी ऐसी घटना का हो जाना असम्भव नहीं, जो पिछली तमाम दुर्घटनाओं पर पर्दा डाल दे।

जयदेव मिश्र एक ज्योतिषी थे। उन्होंने अपने तीन लड़कों में से दो को अंग्रेजी की उच्च शिक्षा दिलवाई थी। बड़ा लड़का हरिदेव एम० ए० में सर्वप्रथम होकर फौरन पटना कालेज का प्रोफेसर हो गया था। छोटा भवदेव एम० एस० सी० में सर्वप्रथम होकर किलहल अनुसन्धान का कोई काम कर रहा था। घर वाले उससे आगे चलकर एस० डी० ओ० और कलेक्टर हो जाने की उम्मीद रखते थे। वह स्वयं विलायत जाकर और भी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता था। बड़े की शादी हो चुकी थी और अब इसकी होने वाली थी।

पच्छिमी बंगाल का दिनाजपुर और मालदह जिले बिहार की पूर्वी सीमा से बहुत दूर नहीं हैं। आज से सैंकड़ों वर्ष पहले कुछ मैथिल ब्राह्मण उधर जाकर बस गये। अब भाषा, वेष, शिक्षा आदि की दृष्टि से वे बिल्कुल बंगाली हो गये। औरतों तक ही अपने देश की संस्कृति, सभ्यता और भाषा सीमित रह गई है। राय बहादुर ब्रजबिहारी ठाकुर दिनाजपुर के रहने वाले थे। पूर्णिया में आप कलेक्टर के ओहदे पर थे। अपनी लड़की के लिए वर का पता लगाते-लगाते उनकी नज़र भवदेव पर पड़ी। बात पक्की हो गई। राय बहादुर ने मान लिया कि वह या तो भवदेव को विलायत में पढ़ने का सारा खर्च देंगे या डिप्टी मजिस्ट्रेट का ओहदा दिलवा देंगे। पिता का विचार न रहने पर भी भाई तो इस विवाह-वार्ता से सहमत था ही। पूर्णिया में ही भवदेव की शादी हो गई। बस, फिर क्या था? उठा शुभंकरपुर में तूफान! लोगों ने कहना शुरू किया—बंगाली की लड़की से जयदेव ने अपने लड़के की शादी करा दी। लड़की का बाप किरिस्तान है,

और अंडा खाता है। बाल-बच्चे समेत इतवार के दिन गिरजा जाता है। इस चर्चा ने इतना तूल पकड़ा कि चाची की कलंक कथा) उसके आगे विलकुल फीकी पड़ गई। समाजपतियों ने तुलसी, ताम, गंगाजल उठा कर आपस में शपथ खाया—यदि लड़का शादी करके आया, और बाप ने उसे अपने घर में ठुसने दिया, तो जयदेव के यहाँ का अन्न-जल हममें से जो भी ग्रहण करे, वह गो-मांस खाए। तीन बार सविधि उच्चारणपूर्वक यह शपथ लिया गया था। दमयन्ती के दरवाजे पर। दमयन्ती ने भी शपथ लिया था।

चैत का महीना था। एक दिन संध्याकाल पाँच इक्कों ने गाँव में प्रवेश किया और जाते-जाते जयदेव के दरवाजे पर वे रुक गये। पीछे-पीछे गुलाबी रंग की धोती और आसमानी रंग की कमीज़ पहने हँट लगाये भवदेव साइकिल पर आया। लोगों ने आँख फाड़-फाड़कर देखा। वह आकर सीधे अपने दरवाजे पर उतरा। तखतपोश पर बैठ पिता को प्रणाम किया। सामान उतारा जा चुका था। तीन इक्कों पर सूती, ऊनी कपड़ों से भरे टूँक लदे थे। दो पर मिठाइयों से भरे खाँचे। उन मिठाइयों की खुशबू से गाँव भर की हवा भारी-भारी हो रही थी। नथने विचका-विचकाकर बुढ़िया कहने लगीं—हुआ भ्रष्ट ! सारा गाँव इन मिठाइयों को खाकर किरिस्तान हो जायगा। सभी परिवार-पति अपने-अपने दालान पर किंकर्तव्य विमूढ़ होकर बैठे थे। दो बातें उन्हें परेशान किये हुए थीं। एक यह कि बच्चों पर बराबर तो निगरानी रखी जा नहीं सकती। दिनाजपुर के बंगाली के यहाँ से आई हुई यह मिठाइयाँ अगर बच्चों को गुप्तचुप खिला दिया गया तो अन्दर ही अन्दर सारा गाँव विधर्मी के सम्पर्क में आ जायगा। दूसरी यह बात उन्हें परेशान कर रही थी कि जयदेव और उसके कुपुत्र भवदेव का अधिक से अधिक अपमान किस तरह से किया जा सकता है। इन दोनों बाप-बेटों को चित करने के लिए किस्म-किस्म के दौंव-

पंच सोचे जा रहे थे। वच्चों को धमकाकर कह दिया गया था कि उस दरवाजे की ओर गये, तो टाँग तोड़ देंगे।

उसी रात को जयदेव ने लोगों को बुलाया कि आकर नव विवाहित भवदेव पर दूब, अक्षत डाल जायँ। आशीर्वाद दे जायँ। परन्तु दो को छोड़कर तीसरा नहीं गया। पचकौड़ी पाठक और घूटर भा। यही दो जने गये थे। आशीर्वाद देने के लिए कम से कम पाँच ब्राह्मणों का होना तो अनिवार्य है परन्तु भवदेव का आना निश्चित तिथि से तीन दिन पहले ही हुआ, इस असावधानी से दुश्मनों को खिल्ली उड़ाने का बहुत ही बढ़िया अवसर हाथ लगा। जयदेव टिटिया कर मर गये, अपने लगाकर भी चार से अधिक ब्राह्मणों का जुटना पहाड़ हो गया उस दिन। चौथे सज्जन थे जयदेव के मौसरे भाई यदुनन्दन। वह पाँच-छः दिनों से यहाँ पहुँचाई कर रहे थे। मल्लूली के अंडों का बड़ा बहुत ही स्वादिष्ट होता है। यदुनन्दन ने कुछ अधिक खा लिया था। दूसरे दिन रोहू के तले खंडों के साथ घी में भूना चिउड़ा नाश्ता किया था। अगले दिन कटहल की भाजी आवश्यकता से अधिक खा ली थी। नतीजा यह हुआ कि पेट खराब हो गया और अब दही और बेल खाकर शीतोपचार कर रहे थे। इन्हीं कारणों से पहुँचाई में तीन दिन के बदले छः दिन हो गये थे !

पचकौड़ी पाठक समूचे गाँव के निर्णय को अमान्य करके भी जयदेव के यहाँ जो आये, वह भी निस्वार्थ नहीं था। पचकौड़ी के लड़के ने इसी साल मैट्रिक किया था। और, आशा थी कि हरिदेव उसे पटना ले जाकर आगे पढ़ने का कोई रास्ता पकड़ा देंगे। घूटर भा ठहरे पाक-शास्त्री। वह जयदेव की बात में इसलिए आ गये थे कि भवदेव का डिप्टी मजिस्ट्रेट और थोड़े ही दिनों बाद एस० डी० ओ० बन जाना बिल्कुल निश्चित था। सरकारी अफसर के साथ रहना कम भाग्य की बात नहीं है।

गाँव वालों को अपार आनन्द हुआ, जब उन्होंने यह सुना कि ।
 नर के माथे पर दूब अक्षत डालने के लिए जयदेव को पाँच भी हाथ
 न मिले ।

तब भी जयदेव ने बड़ी नम्रता दिखलाई । जयनाथ भी गाँव हा
 में थे । भोला पंडित भी मौजूद थे । दमयन्ती थी ही । दूसरे टोले में
 प्रमुख थे जयनारायण भा और रमानाथ मिश्र । जयदेव ने स्वयं जा-
 जाकर इन पाँचों के पैर पकड़े । गिड़गिड़ाकर कहा—जिसे आप लोग
 बंगाली कहते हैं किरिस्तान कहते हैं, वह प्रवासी मैथिल हैं । कुल
 और शील सब अच्छा है । चाहें तो पंजीकार* से जाँच करवा लें ।

इस पर सभी ने यही कहा कि भवदेव को प्रायश्चित्त लगेगा ।
 तुम्हारे घर भर को प्रायश्चित्त करना होगा ।

सभी घरों में मिठाइयाँ भेजी गई थी । मगर यह बायना लोगों ने ।
 लौटा दिया । जयनाथ ने लौटाया तो नहीं, परन्तु दमयन्ती के बेल को
 खिला दिया । दो दिन के बाद भोला पंडित गोल से फूट गये । जयदेव
 ने उन्हें एक जोड़ा महीन धोती देकर चाँदी के दस रुपये सुँघा दिये
 थे । अब क्या था ? भोला पंडित ने तारा बाबा की कुटिया पर जाकर
 गर्जना शुरू किया—अरे, मैं तो उस ब्राह्मण की सत्रह पीढ़ियाँ जानता
 हूँ । ब्रजबिहारी ठाकुर के दादा, परदादा बहुत बड़े तांत्रिक थे ।
 मुर्शिदाबाद के नवाब ने दिनाजपुर जिले के अन्दर पाँच हजार बीघा

*करणट वंशीय राजा हरिसिंह देव चौदहवीं शताब्दी में मिथिला
 के तमाम ब्राह्मणों की पंजी (फेहरिश्त) बना गये । तब से लेकर वह
 प्रथा चली आ रही है । मिथिला के ब्राह्मणों का मुकम्मल रिकार्ड
 मौजूद है, किसका सम्बन्ध किससे पड़ता है, यह पता लगाना वहाँ
 बहुत आसान है । इन लम्बी फिहरिस्तों के जानकार पंजीकार
 (पजियाड़) कहलाता है ।

लाखिराज ब्रह्मोत्तर उन्हें दिया था। यह लोग तभी से उधर बस गये।...जयदेव के घर और कोई न खाय, मगर...

आवेश में आकर भोला पंडित अपनी छाती पर आप ही मुकियाँ मार-मारकर कहने लगे—मैं ? यह चला मैं जयदेव के घर खाने। देखूँ, कौन मेरा क्या कर लेता है ?...

कहते-कहते वह इतने आवेश में आ गये कि कच्छा खोलकर अपने को अर्धनग्न कर लिया। इसके बाद प्रतिद्वंदियों का नाम ले-लेकर बड़ा ही वीभत्स संकेत किया।

जोरों की गर्जना सुनकर आस-पास के खेतां से कुछ ग्वाले जमा हो गये। उन्हें डर हुआ कि उन्हीं में से किसी की गाय या भैंस पंडित की बगिया में घुसकर कुछ नुकसान कर आई है। जब वे नजदीक आये, तब तक अविराम गर्जन के कारण भोला पंडित का गला बेसुरा हो चुका था; मानां फूटा शंख हो। कच्छा, बच्छा वह ठीक कर चुके थे।

विरजू अहीर ने झुककर पालागन किया और नम्रता से पूछा—क्या बात है ? किस पर आप इतना गरज रहे थे ?

भोला पंडित ने थके स्वर में कहा—अरे, जयदेव का लड़का ब्याह करके आया है। जानते हो न ?

हाँ, सब जानते हैं—विरजू बोला।

भोला पंडित ग्विसियानी सूरत बनाकर बोले—सारा शुभंकरपुर जयदेव के ऊपर उलट पड़ा है। चाहते हैं लोग यही कि जयदेव सब की जूतियाँ धो-धोकर पिण।...

थोड़ा-सा विश्राम पाकर भोला पंडित के गले में फिर ताकत आ गई और दायीं हाथ उठकर चला गया मूँछ पर। मूँछ के विरले बालों को मरोड़ने की निष्फल चेष्टा ने उनके आवेश को द्विगुणित कर दिया। वह तमककर बोले—अंग्रेज बहादुर का राज है, कोई किसी को चबाकर खा जायगा, सो नहीं होगा।

इस पर बिरजू अहीर बोला—आखिर गाँववाले चाहते क्या हैं ?

चाहेंगे क्या ?—भोला बोले—जयदेव के दिन फिरेंगे । किसीसे भला यह कैसे देखा जायगा ?

ब्राह्मणों के समाज पर टीका-टिप्पणी करने का अवसर पाकर बिरजू अहीर को सचमुच ही बड़ी खुशी हुई । वह बोला—जब ऐसी बात थी, तब क्या जयदेव बाबू ने सबसे राय नहीं ले ली ? और समाज को भी अब साचना पड़ेगा कि इस जमाने में किसी का एकधरा बनाकर छोड़ा नहीं जा सकता । हजाम अगर बाल नहीं बनावेगा तो क्या ? इस्टीसन पर दिन की गाड़ी के वक्त दस-दस हजाम दाढ़ी-बाल बनाने को तैयार बैठ रहते हैं । जाँति-पाँति नहीं किसीकी पूछते ! अब बताओ महाराज, जिसका हजाम तुम वन्द कर दोगे, तो जाकर इस्टीसन से बाल न बनवा आयेगा ?

भोला ने कहा—बिरजू, अब इस गाँव में पंडित तो कोई रहा नहीं, ग्वाली गधे भरे पड़े हैं । उनकी समझ में यह बात नहीं आती ।

अभी तक तारा बाबा कुटिया में बैठे जप कर रहे थे । जप खतम हो गया । वह बाहर निकले । देखा, भोला पंडित बिना नाथे बैलों को हाँके जा रहे हैं । गाँव का कोई भी रहस्य बाबा से छिपा नहीं था । गाँववालों पर कभी बाबा ने अपना निर्णय थोपने की कोशिश नहीं की । फिर भी बाबा के लिए सभी के हृदय में श्रद्धा थी । उनके पास जयनाथ जैसे कामचोर, जिद्दी, और रगड़ी आते थे और भोला पंडित जैसे लोलुप, अवसरवादी और काइर्या भी आते थे । कभी-कभी जयदेव भी आते थे ।

बाबा को सामने खड़े देखकर भोला पंडित और बिरजू अहीर, जो बैठ चुके थे, खड़े हो गये । बाबा ने हाथ से इशारा किया—बैटो ।

एक बार और अन्दर जाकर फिर वह बाहर आये तो हाथ में एक बड़ा-सा बेल था । उसे भोला की ओर बढ़ाते हुए बाबा ने कहा—

बागो जगदंबा की पूजा के लिए अड़हुल के लाल फूल मुझे दे जाया करती है, यह बेल ले जाओ, उसको देना ।

भोला पंडित का गर्जन सुनकर दो-चार ग्वालें जाँ और आये थे, वह गर्जने की वजह जानकर वापस चले गये थे । विरजू ही था, जो नजदीक आकर बैठा था ; तारा बाबा की यह कुटिया गाँववालों की सभी सम्पत्ति थी । सुखी, धनी-गरीब, बाभन-राड,* पठित-अपठित, सभी आते थे समय पाकर ? बाबा भी गाँव भर में सब के यहाँ जाने को तैयार रहते । इधर बुढ़ापे के कारण वह कुटिया से निकलते कम थे । कल जयदेव के यहाँ से दही, केले, मिठाइयाँ आई थीं । भगवती को भोग लगाकर और थोड़ा-सा अपने लिए रखकर, बाकी बाबा न बच्चों में बँटवा दिया ।

भोला पंडित को अपने पक्ष में पाकर जयदेव निश्चिन्त हो गये कि यह बुढ़ा खुद ही कई को खींच लायेगा ।

और हुआ भी ऐसा ही ।

— १६ —

शुभंकरपुर की कुल उपजाऊ जमीन का रकबा तीन सौ बीघा था । ढाई सौ बीघा धान के खेत थे । पचास बीघा रबी और भदई के । इसके अलावा आमों के बाग, बाँसों के जंगल, तालाब, गोचर आदि के लिए पचास बीघा और पड़ते थे । ढाई सौ परिवारों की आबादी, खानेवाले मुँह ग्यारह सौ । साफ है कि गरीब ही अधिक थे । यह गरीब भी दो श्रेणी में बँटे थे । बाभन और गैर-बाभन । ब्राह्मणों में विद्या का खूब प्रचार था । पढ़े-लिखे लोग शहरों में फैले थे । चिट्ठियाँ और मनीआर्डर उन्हीं की बदौलत गाँव में खूब आते । सौ घर ब्राह्मण थे;

*छोटी जाति के लोग ।

मुश्किल से पन्द्रह घर ऐसे होंगे, जिनकी शुमार महादरिद्रों में होती थी। बाकी लोग खेती के अभाव में भी भर पेट खानेवालों में से थे। गाँव के नजदीक ही हाट लगता था, सोमवार और गुरुवार को। धान, चावल, दाल, तेलहन, महुआ, मकई, साग-भाजी, मछली, पान, मोटिया गमछा और चादरे—हाट के रोज शुभंकरपुर के लोग यह चीजें जाकर खरीद लाते थे।

इस गाँव के ब्राह्मणों का खिला चेहरा देखकर बाहर वाले सोचते—बड़े सुखी होंगे ये लोग। काफी खेत होंगे इन लोगों के पास ! मगर, असलियत यह थी कि लूट लाओ, कूट लाओ। ये लोग जवार में जब भोज खाने जाते, तो इनका साफ-सुथरा पहनावा, विनीत और भद्र वेष देखकर दूसरे गाँव वालों को भ्रम होता कि जमीन्दार घराने के होंगे।

इस मौजे के मालिक रायबहादुर दुर्गानन्दनसिंह बड़े जमीन्दार तो थे ही, साथ ही लहना-तगादा का भारी कार-बार भी चलाते थे। आस-पास की पाँच कोस जमीन पर उनकी छत्रछाया थी। तीन लाख रुपये पचीसों बस्तियों के इस समुद्र में दाँत निपोड़े पूँछ कड़ी किये मगरों की भाँति टहल-बूल रहे थे। व्याज का दर प्रतिमास डेढ़ रुपये सैकड़ा था। राजा बहादुर पुराने अँगूठे को साल-साल नया करवाते जाते। सूद भी मूर बनता जाता। चक्रवृद्धि का यह क्रम राजा बहादुर की शरीर वृद्धि के लिए रसायन का काम कर रहा था। कहते हैं, हबेली में नगद रुपये रखने के लिए उन्हें चहबच्चा बनाना पड़ा था। माँ के श्राद्ध में समूचे भारत के उन पंडितों की आपने सभा बुलवाई थी, जो महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित हैं। प्रत्येक पंडित को दुशाला और एक सौ एक रुपये की विदाई दी गई थी। आने-जाने का सेकंड क्लास का खर्च। सात दिनों तक पंडितों का शास्त्रार्थ चला था। मैथिल पंडितों को अपनी भूमि पर अपने पांडित्य-प्रदर्शन का जो सुयोग मिला, वह अभूतपूर्व था। बाहर के पंडित विदा होते समय राजा बहादुर को 'धर्म-दिवाकर' की गौरवपूर्ण उपाधि से सुशोभित

करते गये । जवार के पचासों गाँव निमंत्रित किये गये थे । उन्हें पूड़ी-तरकारी से नहीं, खाजा, मुँगवा (बुँदवा) घेवर, बर्फी, पेड़ा, बालू-साही, रसगुल्ला, गुलाबजामन, जलेबा वगैरह अठारह किस्म की मिठाइयों से परितृप्त कर दिया गया । हाथी के कान जैसा बड़ा-बड़ा खाजा, फुटबाल-जैसा मुँगवा था । दरअसल यह चीजें खाने की नहीं, तमाशे की थीं । सबके आगे बड़े पत्तलों में मिठाइयों का ढेर लगा था । जूठन की उन मिठाइयों को जवार के शूद्रों ने कई दिन तक खाया था और आज भी उल्लसित होकर वे राजा बहादुर का गुणगान कर रहे हैं । ब्राह्मणों को भर-भर अँजुरी बम्बइया सुपारी दी गई थी । महापात्र को हाथी मिला था ।

अपने वैभव के इस विराट प्रदर्शन से राजा बहादुर को इतना आत्मसन्तोष हुआ कि खाने-पीने में अरुचि हो गई । कोई भी चीज चित्त पर चढ़ती ही न था । एकमात्र कन्या थी । धूम-धाम से उसकी शादी वह पहले ही कर चुके थे । स्टेट का सारा भार घर-जमाई के कन्धों पर डालकर राजा बहादुर तीर्थयात्रा के लिए निकलने ही वाले थे कि सन् ३७ का वह कांग्रेसी जमाना आ धमका ।

बार-बार आगा-पीछा सोंचकर कांग्रेस ने जब प्रान्तों के शासन में हाथ बाँटना स्वीकार कर लिया तो जनता ने युग की ओर नई आशा से देखा । मिनिस्टरा कबूल कर लेने पर नेताओं का उत्तरदायित्व बेहद बढ़ गया । चुनाव के समय उन्होंने जनता से बड़े-बड़े वादे किये थे ।

जमीन्दार चुनाव में हारकर अपने अन्धकारमय भविष्य की कल्पना करते हुए कल्लुए की भाँति दुबके पड़े थे । अन्दर ही अन्दर कुल्लु सोचकर अपने पैतरे बदल डालने का उन्होंने निश्चय किया । परम्परा की दुहाई देकर कांग्रेसी मंत्रियों को उन्होंने धमकी दी—
“आपका खादी का कुर्त्ता पहले हम अपने खून से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर जमीन्दारी प्रथा उठा दीजियेगा ।”

मंत्रियों ने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर, मुँह कर दिया, जमीन्दारों की ओर। दुनिया भर में बदनामी फैल गई कि बिहार की काँग्रेस पर जमीन्दारों का असर है। जवाहरलाल तक ने खुल्लम खुल्ला यह बात कही।

किसान संगठित होने लगे। उनका नारा था—“कमाने वाला खाएगा, इसके चलते जो कुछ हो।” संगठन की यह हवा राजा बहादुर की भी जमीन्दारी में पहुँची। उनकी सूदखोरी और जमींदारशाही से सारा इलाका तंग आ गया था।

हजारों बीघा जमीन वह किसानों को मनखप (कूत, मनहुन्डा) दिए हुये थे। चार मन फी बीघा से लेकर पंद्रह मन फी बीघा तक रेट था। शुभंकरपुर के ग्वाले सत्तर-अस्सी बीघा खेत मनखप पर जोतते थे। अब वे लोग भी सुरफुराए। गाँव में से ही दो-तीन लीडर निकल आए। बलुआहा पोखर के भिन्डे पर किसान-कुटी बन गई। घर-घर से मुठिया वसूल होने लगा। किसान कुटी के लिए किसी ने लोटा दिया, किसी ने थाली दी। कुम्हार ने घड़े दिये, तौला दिया, कड़ाही दी। उमानाथ की माँ ने अपना दो साल का पुराना कम्बल दे दिया। उसके पास दूसरा कम्बल नहीं था। रतिनाथ ने मना किया तो बली—यह दस का काम है। देश का काम है। गरीबों का यज्ञ है। मेरे पास और है ही क्या, जो दूँगी।

ब्राह्मणों में इस बात को लेकर दो दल हो गये। एक दल जमीन्दारों की ओर था, दूसरा किसानों की ओर। जो लोग जमीन्दारों की ओर थे वे खूब नफा में रहे। आन्दोलन की बातें इस तरह बढ़ा-चढ़ाकर राजा बहादुर के कानों में डाली गई कि वह बदहवास हो गए। बढ़िया-से-बढ़िया धनहर खेत सौ या पचास रुपये फी बीघा लुटाने लगे। “आग लगन्ते भोपड़ी जो आवे सो हाथ।” किसान विद्रोह भर भी जमीन छोड़ने को तैयार नहीं थे। उनमें गजब का जोश था। उनके लीडर दरभंगा और पटना तक दौड़ लगा रहे थे। इस संघर्ष

की जरा-जरा-सी बात भी “जनता” में विस्तारपूर्वक छपती थी। सभा, जुलूस, दफा एक सौ चौवालीस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, भूख-हड़ताल, रिहार्ड—यह सिलसिला किसानों को ठंडा नहीं कर सका। जयदेव, ज्योतिष पढ़-लिखकर घर बैठ गए और अब तीन-तीन लायक बेटों का भाग्यवान् बाप बनकर बुढ़ापे के दरवाजे पर खड़े थे ! शायद ही कोई कुकर्म उनसे छूटा हो। तरुणी विधवाओं को प्रेम-पाश में फँसा कर फिर उनकी जायदाद अपने नाम लिखवा लेना और चूसे आम की गुठली की भाँति फिर उन्हें फेंक देना; दो खेत वालों में सिवान का भगड़ा खड़ा करके मुकदमों में बभा देना और उनमें से एक को खदुका बनाकर लील जाना; सस्ते दामों में अँगूठे (हैन्डनोट) खरीदकर पीछे ज्यादा-से-ज्यादा रकम चढ़ाकर उन्हें अदालत में पेश कर देना; अपने घर में आप ही सेंध डलवाकर पड़ोसी को गिरफ्तार करवा देना—इसी रास्ते से चलकर जयदेव उस मंजिल तक पहुँचे थे, जहाँ कि चोरो का सरदार और थाने का दरोगा समान श्रद्धा-भक्ति से स्वागत पाता है। किसान-आन्दोलन से सर्वाधिक लाभ इन्हीं महाशय को पहुँचा, क्योंकि राजा बहादुर ने दबंग समझकर मनखप वाले दश बीघा खेत जयदेव को लिख दिया, सिर्फ छः सौ रुपये लेकर। मालूम होने पर किसान गुस्से के मारे पागल हो गए, मगर अन्दर के घूसखोर और ऊपर के पुरजोर कुछ किसान-सेवकों ने उल्टा-सीधा समझाकर उन्हें शान्त कर दिया। जिला-किसान सभा के एक प्रमुख नेता रमापति भा परसौनी के रहने वाले थे, तीन साल तक एङ्गी-चोटी का पसीना एक करके उन्होंने राजा बहादुर के रैयतों को जगाया था। और अब उनके भी मुँह से लार टपकने लगी। चौदह बीघा जमीन मिली, बारह सौ का कर्जा माफ हो गया। शुभंकरपुर के तीन तरुण ब्राह्मण छोटी जाति वाले किसानों का अग्रग्रा बनकर उठे थे। दो-दो बीघा खेत देकर राजा बहादुर ने उनके भी मुँहों में दही लगा दिया। इतने पर भी किसान डटे रहे। पड़ोस के एक दूसरे छोटे

जमीन्दार ने राजा बहादुर के शुभंकरपुरवाले सारे खेत लिखा लिये । किसानों के संघर्ष को अवसरवादी नेता चौपट कर चुके थे । मुकदमा लड़ते-लड़ते उन बेचारों का बुरा हाल था । ऐसी स्थिति में झंडित कालीचरण के नौजवान लड़के ताराचरण ने बीच-बचाव करके नये जमीन्दार से यह मनवा लिया कि खेत किसानों की ही जोत में रहेंगे । फी बीघा ग्यारह मन के हिसाब से अनाज इसके एवज में उसे साल-साल मिलता रहेगा । हारती बाजी के समय का यह मामूली नेतृत्व किसानों की दृष्टि में ताराचरण को आगे ले आया ।

किसानों के उस संघर्ष का जब इस प्रकार उपसंहार हो रहा था तब दो साल पूरे हो चुके थे और यूरोप हिटलर के चंगुल में था । कांग्रेसी मंत्रिमंडल इस्तीफा देकर विश्राम कर रहा था । विश्राम तो क्या कर रहा था, आगामी महासंघर्ष की चर्चा में जोर से लग गया था ।

—१७—

जयकिशोर की बदली मोतिहारी जिला स्कूल में हो गई थी । एक ही भेंट ने रतिनाथ के प्रति उनके हृदय में ममता पैदा कर दी थी । इस बार प्रथमा परीक्षा पास कर चुकने पर रत्ती ने उन्हें पत्र लिखा और साथ रहने की अपनी इच्छा प्रकट की । जवाब में जयकिशोर ने लिखा—तीन जून से हमारा स्कूल बन्द हो रहा है । तेरह जुलाई को खुलेगा । पाँच-सात दिन पहले ही तुम तरकुलवा आ जाना । साथ ही मोतिहारी आ जाएँगे ।

रत्ती ने चाची को मामा का पत्र दिखाया तो वह गम्भीर हो गई । चर्खा चला रही थी । खतम हो रही पूनी के छोर पर नई पूनी रखते हुए एक बार उन्होंने रत्ती के मुँह की ओर देख लिया । चर्खा ज्यों का त्यों चल रहा था । जरा देर बाद अपनी दृष्टि को तबू पर

सीमित किये हुए ही चाची बोली—मुझे क्या, अकेली भी रह लूँगी। परन्तु मेरे भैया के साथ रहकर तुम अपने बाप को न भूल जाना।

रतिनाथ ने कहा कुछ नहीं; सिर्फ गौर से चाची की ओर देखा। वह बोली—समझती हूँ, बाप के प्रति तुम्हारे हृदय में माया-ममता बहुत ही कम है। परन्तु सद्गति तो उनकी तुम्हारे ही तर्पण से होगी। संसार उन्हें खिला सकता है, पिला सकता है, जिला सकता है, पर मरने के बाद वह उन्हें प्रेत होने से नहीं बचा सकता। यह तुम्हीं कर सकते हो।

रत्ती बकर-बकर सुन रहा था। उसे माँ याद आ रही थी। साथ ही पिता का वह कसाईपन और कुल्हाड़ी से गला काटने की चेष्टा का वह दृश्य भी याद आ रहा था...

चिन्तना की गहरी छाप रत्ती के चेहरे पर देखकर चाची ने बात-चीत का सिलसिला बदल दिया। बोली—अरे ! हाँ अब मेरा सूत खादी भंडार कौन ले जाएगा ?

रत्ती थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला—मधुवनी जानें वाला कौन भी क्या कमी है ? जिसीसे कहोगी, तुम्हारे सूत के लच्छे पहुँचा देगा।

अपने बारीक सूत पर निगाह टिका कर ही चाची बात-चीत कर रह थीं। उन्होंने कहा—क्या-क्या ले जाओगे ?

लोटा, धोती और किताब।

चाची ने मुस्कराकर कहा—और मुझे क्या इसी जंगल में छोड़ जाओगे ?

अब रत्ती का मुँह खुला—मुनता हूँ, पुराने जमाने में तापसियाँ वनवासिनी होती थीं। कम से कम खाना-पीना, कम सोना। व्रत और उपवास। भक्ति और भजन। अतिथियों की सेवा। सबके प्रति ममता का भाव। यही उनकी जीवन-चर्या थी। और चाची, तुम भी बहुत

बदल गई हो। दिन-रात चर्खा चलाकर अपने लायक पैसा कमा लेती हो। तीस दिन में दश दिन तो तुम्हारा उपवास में चला जाता है। शरीर सूखकर काँटा हो गया है। गाँव में भूला-भटका कोई आ जाता है, तो लोग उसे इस टोले में भेज देते हैं कि उमानाथ की माँ दो मुट्ठी भात और कलछी भर दाल आगन्तुक को खिला दी देंगी। बारह ग्वड़ी मुझसे सीखकर अब तुम रामायण बाँचने लग गई हो। ऐसा लगता है कि दिन से दिन तुम देवता होती चली जा रही हो।

जिस हाथ से चाची चर्खा चला रही थीं, उसी हाथ से रत्ती के गाल पर हल्की चपत लगाकर बोलीं—दुत् पगला ! और हाथ फिर चर्खा चलाने लगा। बाएँ हाथ में तो पूनी थी ही।

इतने में रत्ती को पुकारता हुआ सत्तो आ गया। उसके साथ रत्ती बाहर चला गया।

चाची का जीवन सचमुच ही इधर एक विशेष प्रकार का हो गया था। रत्ती ने अभी जो कहा, उसमें थोड़ी भी अत्युक्ति नहीं थी। तीसरे साल जब वह तरकुलवा से आई, तभी से चर्खा चला रही हैं। पचीस-तीस रुपये हर महीने इससे निकल आते हैं। सूत बेहद बारीक कातती हैं। चर्खा-संघ वाले भी कम चालाक नहीं होते। चाची जैसी कत्तिना के सूत को कभी तो एक सौ दश नम्बर का करार देते हैं और कभी साठ। तरीका चर्खा-संघ वालों का यह है कि पहले कुछ दिनों तक महीन सूत कातने वाली के प्रति कुछ इन्साफ का अभिनय किया, सूतों के माकूल नम्बर दिए। बाद में धीरे-धीरे नम्बर घटाते गए। मरकर कत्तिना को यह सब बर्दाश्त करना पड़ता है, तभी तो चाची-जैसी कत्तिनें अखिल भारतीय सूत-प्रतियोगिता में सर्वप्रथम पदक पाने पर भी इतनी कम मजदूरी पाती हैं।

चाची की समझ में यह नहीं आ रहा था कि गांधीजी के चेले इस प्रकार की बेईमानी क्यों करते हैं? फिर भी चर्खा चलाते रहने से

चाची को बहुत लाभ पहुँचा है। आर्थिक-समस्या हल हो गई। मन नियंत्रित हो गया। दुर्भावनाओं से छुटकारा मिला। इधर वह जयनाथ की भी ओर से तटस्थ थीं। आज कल वह अधिकतर गाँव में ही रहते हैं। बचे-खुचे खेत बेचकर महाजन बनने की धुन में कजरौटा और सादा कागज लिये बैठे रहते हैं। बादाम और खीरा के बीज डालकर तैयार की गई दूधिया भाँग आप उन्हें पिला दीजिए और पचास-पचहत्तर ले लीजिए, अँगूठा का निशान भले ही दो दिन बाद बना दीजिएगा। दादा, परदादा के जमाने के खेत बेचने का विचार रत्ती को असह्य लगा था। परन्तु चौदह साल का लड़का कर ही क्या सकता था ?

एक विधवा तेलिन इन दिनों जयनाथ की प्राणवल्लभा बनी थी। चाची ने समझाया—शादी कर लो बाबू, एक भले आदमी की जिन्दगी बिताओ। सेंध लगाने के फिराक में भीतों की ओर घूरते रहने वाला चोर क्या खाक चैन से रहेगा !

अपनी भूतपूर्व प्रेयसी की ये बातें जयनाथ को गुड़िच-सी कड़वी लगीं। उनकी सिर्फ एक ही दलील थी कि संसार मुझे क्या कहेगा ? लड़का सयाना हो रहा है, शादी तो उसकी न होनी चाहिए ?

इस पर चाची का कहना था कि लड़का के खा-पी लेने पर क्या तुम्हारी भी भूख-प्यास मिट जाती है ? उमानाथ की उसी माँ के मुँह से यह बात सुनकर जयनाथ देवरोचित परिहास कर बैठते—और, तुमने क्या अमृत पी लिया है ?

चाची का चेहरा दीप्त हो उठता। क्षुद्र पुरुष के इस धृष्ट-परिहास का मुँहतोड़ उत्तर देना अत्यन्त आवश्यक समझकर वह बोल पड़तीं—किसी भी युग में स्त्री को अमृत पीने का सुयोग नहीं मिला। पुरुष को अमृत पिलाकर स्वयं वह विषपान ही करती आई है...जाने दो, तुम यह सब क्या समझोगे !

पिछले साल इन्हीं महाशय ने उमानाथ की माँ को क्या कम परेशान किया है ! दिन में तो नहीं, परन्तु रात को सोना चाची के लिए हराम हो गया था । वह रत्ती को बराबर अपने नज़दीक सुलातीं, फिर भी जयनाथ नहीं मानते । खा-पी चुकने पर कहानियाँ सुनते या गप करते जब रत्ती सो जाता तो किसी न किसी बहाने जयनाथ चाची के पास आ बैठते । वह बेचारा भी सँभलकर उठ बैठती । उसका रोम-राम जागरूक प्रहरी बन जाता । जयनाथ का हाथ बहकता तो चाची उसे पकड़कर आहिस्ते से हटा देतीं । वासना के उद्रेक से जयनाथ की जीभ लड़खड़ाने लगती तो वह फुर्ती से उठकर बीच आँगन में आ जातीं । ऊपर नीले आकाश में, नक्षत्रों का मृदु मधुर आलोक उस समय चाची को आकर्षित नहीं करता । उसका सारा ध्यान रुग्ण हृदय वाले अभागे जयनाथ पर केन्द्रित रहता ।

मन्मथका यह नृत्य देर तक देखते रहना उसे जयनाथ के प्रति अन्याय प्रतीत होता । वह दौड़कर पीढ़ा ले आतीं और उस पर जयनाथ को बैठा देतीं । कुएँ का ठंडा पानी घड़ा में मौजूद रहता ही । चाची फुर्ती से घड़ा उठा लातीं और जयनाथ के माथे पर धीरे-धीरे ठंडा पानी ढालने लगतीं । आपत्ति करने पर कहतीं—नहीं, धो लो । फिर देखा जाएगा । परन्तु पंद्रह मिनट तक शीतल-जल के इस अभिषेक से जयनाथ स्वस्थ हो जाते । चाची धोती लाकर पहना देतीं ।

चलो सो रहो—जयनाथ का हाथ पकड़े चाची उन्हें बिस्तरे पर लिटा आतीं । जब वह लेट जाते तो तेल और पानी मिलाकर तलवे रगड़ने लगतीं । इस तरह उन्हें सुलाकर तब रत्ती के पास आतीं और सो रहतीं ।

इसी प्रकार वह अपने को जयनाथ से बचाती रही हैं । तैंतीस साल के इस विधुर देवर के प्रति उसका वही भाव रहता है जो कि एक समझदार माँ का अपने बीमार बालक के प्रति । वह उन्हें घृणा की दृष्टि से नहीं देखती थीं । खेत भी जयनाथ ने अपने मन से बैचा

था। उससे पूछते तो जरूर मना करती। रत्तीके सम्बन्ध में चाची उतनी चिन्तित न रहती थीं, जितनी कि जयनाथ के संबन्ध में। उम तेलिन से जयनाथ का सम्पर्क जो इधर स्थापित हो गया, उसका पता चाची को कई महीने बाद ही लग सका। यह समझकर कि यो भी भला गाँव में इनका मन लगा रहे, उसने इस बारे में जयनाथ से कभी कुछ कहा नहीं।

अब चाची आत्मलीन रहने लगी थीं। इसीलिए रत्तीका मोति-हारी जाना उन्होंने इतनी आसानी से मंजूर कर लिया।

मर्दों में से एक ही था कि जिससे इन दिनों चाची की घनिष्ठता थी। वह था तारा चरण। किसान-आन्दोलन के आरंभ में ही उसे अखबार पढ़ने की चाट लगी और अब वह दैनिक 'आज' का नियमित ग्राहक एवं समझदार पाठक हो गया था। किसान-सभा के नाम पर चाची ने कई बार थोड़ा-थोड़ा करके चन्दा दिया था। गरीबों के स्वराज और धनिकों के स्वराज में आकाश-पाताल का अन्तर है, यह बात चाची के हृदय में ताराचरण ने भली-भाँति बैठ दी थी। ताराचरण दूसरे तीसरे दिन पर आकर चाची को देश और दुनिया के हाल बताया करता। पर्व-त्योहार के दिन वह न्योता देकर उसे ही खिलाया करती।

—१८—

उमानाथ भागलपुर से कलकत्ता चला गया था। खूब मन लगाकर पढ़ने पर भी भागलपुर में जब वह प्रथमा पास नहीं कर सका, तब विशाल और कोलाहलपूर्ण कम-क्षेत्र में अपना उचित स्थान प्राप्त करने की नीयत से कालीजी की छत्रछाया में उसने प्रवेश किया। थोड़े दिनों तक इधर-उधर धक्के खा लेने के बाद पान की एक दुकान

माहवारी। शुभंकरपुर के वैदिक अच्युतानन्द दिन भर घास की तरह पान कचरते रहते। हरी सनरोड और अपर चितपुर रोड का जहाँ कास हुआ है, उसी नुकड़ पर पान की वह दूकान थी जहाँ से वैदिकजी पान लिया करते। इस दूकान के तम्बोली लोग दरभंगे के ही रहने वाले थे। कलकत्ते में लाखों विहारी हैं। युक्तप्रान्त के पूर्वी जिलों के भी हजारों होंगे। उन्हें बँगला पान नहीं सुहाता; मगही और देशी पान ही उन्हें रुचते हैं। इसीलिए इधर के सैकड़ों तमोली कलकत्ते में पान की दूकान करते हैं। वह चलती भी खूब है। उस नुकड़वाली दूकान के मालिक ने वैदिकजी से पुराने नौकर के भाग जाने का जिक्र किया तो अगले दिन ही वह उमानाथ को भरती करा गए। हाँ, कमीशन के तौर पर पहले मास के वेतन में से पाँच रुपया देने की बात उन्होंने उमानाथ से मनवा ली थी। इन बातों को वैदिकजी वेद पाठ के अन्दर ही समझते थे, नये आगन्तुकों की पहली कमाई में से इस तरह कुछ न कुछ ले लेना अच्युतानन्दजी की अच्युत नीति थी।

उमानाथ दसों घंटा अविरामगति से सरौता चलाता हो, ऐसी बात नहीं थी। पान की दूकानों का तरीका यह है कि सुपारी के छोटे-छोटे टुकड़े करके आज शाम को उसे पानी में डाल देंगे और कल सुबह दूकान खोलने पर उसे छ़ाँक लेंगे या थोड़ा-थोड़ा करके जरूरत के मुताबिक दिन भर छ़ाँकते रहेंगे। उमानाथ को दिनभर के लायक सुपारी काटने में छः घंटे लगते थे। उसके बाद मौज थी। लेकिन दूकान पर मौजूद रहना लाजिमी था। कुल मिलाकर वहाँ चार छोकरे थे। मालिक स्वयं शाम को आकर डेढ़ घंटा, दो घंटा बैठा करता। सारा काम नौकर हाँ करते। उनमें से एक का काम था पीतलमढ़ी चौकी को, कत्थे की फुलही गड़वी को, जर्मन सिल्वर की दो मझोली बाल्टियाँ को, पान कतरने वाली छूरियों को माँज-मूँज कर भकाभक रखना। एक का काम था सुपारी काटना, कत्था फुलाना, स्टॉक से लेकर छोटे डब्बों में जरदा, मसाला, इलायची भर देना। दो का काम था

पीतलमढ़ी, उस चौकी के दोनों ओर बैठ कर फुर्ती से गाहकों को पान लगा लगा देते जाना ।

चारों नौकर हमउम्र थे । अपना देहाती दायरा छोड़कर वह बाहर आ गए थे । कलकत्ते की हवा उन्हें लग रही थी । आपस में अनबन का कोई कारण नहीं था । इसलिए किसी व्यक्तिगत काम के लिए उनमें से एक भी अपनी ड्यूटी छोड़कर नहीं जाता तो बाकी तीनों उसका काम सम्हाल लेते । उमानाथ चार महीने उस दूकान पर रहा । छोड़ते समय वह बीस पा रहा था । लड़ाई छिड़ जाने पर भी खाने-पीने की चीजें अभी सस्ती थीं । मन्दिर स्ट्रीट के एक मकान में डेरा था । पाँच-छः जने थं, मिल-जुल कर रसोई कर लेते । खाने का खर्च छः से अधिक नहीं पड़ता । साबुन, तेल, हजामत वगैरह के लिए दो रुपये काफी थे । बारह रुपया प्रतिमास बचाए जाने में उमानाथ को किसी प्रकार की दिक्कत महसूस नहीं होती । माँ को खत या रुपया वह कुछ नहीं भेजता । उन्नीस वर्ष का हो रहा था, जाने किसने उसके दिल में यह बात बैठा दी थी कि चार-पाँच सौ रुपया जमा नहीं करोगे, तो शादी नहीं होगी । बचे हुए रुपये वह डाकखाने में जमा करने लगा ।

उसके मेस में खाने वाले सभी प्रायः दरभंगा जिले के ही थे । सबके सब ट्राम कम्पनी के मुलाजिम थे । दो ड्राइवर, तीन कंडक्टर । उन्हीं लोगों की बदौलत उमानाथ को ट्राम कम्पनी में ड्राइवर का काम मिल गया । ऊपर बिजली के तार का सहारा लेकर नीचे सड़क से सटी पटरियों पर दौड़ने वाली यह छोटी-छोटी गाड़ियाँ कलकत्ता के नागरिक जीवन में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती हैं । ट्राम गाड़ी बिजली के चार-चार, पाँच-पाँच खम्भों की दूरी के फासले पर खड़ी होती जाती हैं । एक ओर से आप चढ़िए, दूसरी तरफ से उतर जाइयेगा । कंडक्टर आकर, टिकट के लिए पूछेगा । इकत्री का

टिकट ले लीजिये, चार-चार मील चले जाइये । सबसे सस्ती सुविधा-जनक सवारी है यह !

पाँच ही छः दिन में उमानाथ ने ड्राइव करना सीख लिया । ट्राम के ड्राइवर को मोटर के ड्राइवर की तरह लंबी ट्रेनिंग नहीं दी जाती । रोकना, चालू करना, दाएँ-बाएँ मोड़ना, पीछे खिसकाना, और राहगीरों की भीड़-भाड़ में से गाड़ी को बचाकर ले जाना—यही सब उसे सिखलाया जाता है । दश-पंद्रह दिन पुराने ड्राइवर के पास खड़ा रहकर उसे गाड़ी चलाने दी जाती है । बाद में धोखाधड़ी मिट जाने पर वह अकेले ही गाड़ी चलाने लगता है । ट्राम में इंजिन तो होता नहीं, होती है विजली । छोटी लाइन की रेलगाड़ी के डिब्बों से भी छोटे छोटे डिब्बे होते हैं । दो डिब्बों की एक गाड़ी बनती है । अगले डिब्बे के सिरे से सम्बद्ध एक बड़ा-सा डंडा ऊपर की ओर उठा रहता है । उसका ऊपरी छोर सड़क के बीचो-बीच फैले चले गये तार को छूता रहता है । ड्राइवर के स्विच दबाते ही ऊपरी तार से संपर्कित डंडा सर-सर-सर-सर सरकने लगता है और गाड़ी चल पड़ती है । गाड़ी को रोकना होता है तो स्विच को ऊपर कर देते हैं । इसी तरह चलाने, ठहराने, मोड़ने, तेज करने वगैरह की स्विचें ड्राइवर के सामने होती हैं । ट्राम का फुर्ती से सरकने लगना, फुर्ती से खड़ा हो जाना और फिर चल पड़ना, अनभ्यस्त और अपरिचित लोगों को अजीब-सा लगता है । चढ़ते-उतरते समय दस-पाँच दिनों तक उनके पैर लड़खड़ाते हैं ।

बत्तीस रुपये पर उमानाथ बहाल हुआ । फिर भी अपना खर्चा उसने नहीं बढ़ाया । उसके पिता कुछ जमीन गिरवी रख गये थे । पचहत्तर रुपये में पन्द्रह कठ्ठा ज़मीन फँसी थी । बेचने पर आजकल छः सौ रुपये मिलते । उमानाथ ने भोला पंडित के नाम छिहत्तर रुपया आठ आना मनीआर्डर भेजा । समूचा गाँव दंग रह गया । किसी ने कहा—यह है बाप का बेटा । किसी ने कहा—उमानाथ की

माँ के दिन फिर गए। भोला पंडित इसीलिए फूल कर कुप्पा हो गये कि मनीआर्डर जयनाथ के नाम से न आकर उनके नाम आया। लंबी साँस खींच कर जयनाथ ने कहा—बाबा विश्वनाथ मेरे भतीजे पर इसी प्रकार दया दृष्टि रखें। रत्ती को बड़ी खुशी हुई। चाची ने सुना, तो उनकी आँखों में आँसू ललक आये।

पति के देहान्त के बाद न जाने कितनी मुसीबतें मेल कर चाची ने अपने लड़के को पाला-पोसा, बड़ा किया था। आज उमानाथ इस योग्य हुआ है कि बाप के फँसाये खेत को छुड़ा रहा है। जमीन के इस उद्धार को चाची ने भगीरथ द्वारा उद्धत तथा अवतारित गंगा से कम महत्व नहीं दिया। अगले ही दिन उन्होंने रत्ती से खत लिखवाया—

स्वस्ति सकल मंगलाऽऽलय चिरंजीवि श्री बबुआ उमानाथ को गौरी का शुभ आशीर्वाद पहुँचे। अत्र कुशलं तत्रास्तु।

आगे हाल समाचार यह है कि तुम्हारा भेजा हुआ मनीआर्डर बागो के बाप के नाम पर आया। खेत उन्होंने छोड़ दिया। बेटा, दो साल से तुम घर नहीं आये। कसूर मेरा ही है, मगर इस तरह संन्यासी बनने से तुम्हारा काम नहीं चलेगा। सौराठ* की सभा के दिन नजदीक आ गये। मुझे कब तक यों अकेली रखोगे? देह मेरा दिन प्रति दिन दुर्बल होता जा रहा है। तुम व्याह करते, बहुरिया आती। फिर मैं निश्चिन्त होकर जरा काशी प्रयाग हो आती। इति।

जेठ सुदी पंचमी, बुध, सन् १३४६ साल।

इस खत का जवाब डाकिया नहीं लाया, लाए अच्युतानन्द वैदिक। खचिया भर प्रशंसा करते हुए उमानाथ का जो सम्वाद वैदिकजी ने

*विवाह सम्बन्ध निश्चित करने के लिए जहाँ एकत्र होते हैं, उस स्थान का नाम सौराठ है।

चाची से कहा, उसका सारांश इतना ही था कि वह अभी रुपया जमा कर रहा है। पाँच सौ हो जायगा, तब आकर शादी करेगा।

चाची मुट्ठी बाँध कर खर्च करती, तो उनके लिए भी सौ दो सौ बचा ले जाना आसान था, परन्तु इधर इन्हें 'देवाय, धर्माय' का चस्का पड़ गया था। रत्ती को वह अपने ही आश्रम में रखती थीं। दैनिक 'आज' मँगाने के लिए ताराचरण को प्रतिवर्ष पाँच रुपया देने का वादा किया था, इस साल का दे चुकी थीं। इसके अलावा धीरे-धीरे कई बरतन चाची ने खरीद लिए थे। फूल की दो थालियाँ ली थीं, दो लोटे। दो गिलास। अतिथि-अभ्यागत आते तो पहले दरी या कम्बल न रहने के कारण लेटने-पड़ने के लिए उन्हें खजूर की चट्टाई देते समय चाची को कचोट हाता। अब उसने काली भेड़ की ऊन के दो कम्बल मँगवा लिए थे।

यह सब उमानाथ की भावी गृहस्थो का पूर्वाभास नहीं तो और क्या था ?

और अब रतिनाथ जा रहा था मोतिहारों। खर्च में कमी होने जा रही थी। फिर भी चाची उमानाथ के विचार से अप्रसन्न नहीं थी। व्याह मुक्त में होता नहीं, और उसके बाद तो खर्च का ताँता ही बाँध जाता है। पाँच सौ तो क्या, हजार भी हो तो, कम ही होगा।

रतिनाथ चौदहवां साल पारकर पन्द्रहवें में पैर रख रहा था। बड़-हड़वा में पुरोहित की आठ साल की एक लड़की थी। चार सौ पर पिछले साल ही जयनाथ सौदा पटा चुके थे। उन्होंने चाची के सामने एक दिन यह चर्चा छेड़ दी— रत्ती का व्याह बड़हड़वा में कराने का निश्चय कर चुका हूँ। कन्या क्या है, साक्षात् गंधर्विणी है। आठ वर्ष की लड़की या भी 'गौरी' कहलाती है। चार सौ रुपए मिलेंगे। पढ़ने का खर्च देगा। जब चाहोगी गौना कराकर बहू ला दंगे ...

मुनते ही चाची के बदन में आग लग गई। जयनाथ को फटका-रती हुईं वोलीं—तुम भी धन्य हो ! महाजन बनने की धुन में यही सब

सोचा करते हो ? इस तरह मैं तुम्हें रत्ती का गला काटने नहीं दूँगी । तुम्हारा वह खिलौना मात्र है, परन्तु मेरा ? मेरा वह कलेजा है । उसके साथ खिलवाड़ मत करो ।

यह बात बतलाकर बाप के प्रति रत्ती की घृणा को और अधिक तीव्र होने देना चाची को अभीष्ट नहीं था । इसीसे रत्ती को उस अष्ट वर्षा गौरी के संबन्ध में कुछ पता न चला । जरूरत भी क्या थी, वह तो मोतिहारी जाने की भावनाओं में मग्न हो रहा था ।

रत्ती के मोतिहारी जाने में जयनाथ को भला आपत्ति ही क्या हो सकती थी ? अब वह अलग होकर दूर जा रहा था । जयनाथ ने जीवन में पहली बार सन्तान के प्रति ममता का अनुभव किया । वह उसे दरभंगा ले गए, पैर नपवा कर जूता खरीद दिया । देह नपवाकर दर्जी से कमीज सिलवा दी । आज तक न उसने कभी जूता पहना था, न देह की नाप लेकर कटी-सिली कमीज पहनी थी । अपने प्रति पिता का यह वात्सल्य देखकर भीतर ही भीतर ही उस मातृहीन किशोर का हृदय भर उठा ।

जाने का दिन आ पहुँचा । शौच आदि से निवट कर रतिनाथ नहा आया और भक्ति से भगवान की पूजा की । सोचा—चिरपरिचित यह शालिग्राम, यह नर्मदेश्वर, अब मुझे कहाँ मिलेंगे ?

पूजा कर चुकने पर वह खाने बैठा । दाल-भात परवल की तरकारी अचार आम और दही । चाची पंखा झलने बैठी, दश-पाँच कौर मुँह में डाल कर वह उठ गया । खाया नहीं गया उससे ।

कमीज पहनी । कुलदेवता (उग्रतारा) को जाकर प्रणाम किया और छोटी-सी गठरी लेकर बाहर निकला । चाची प्रणाम करते समय उसकी आँखें तर थीं । आशीर्वाद देते हुए उनका भी गला भर आया । गठरी जयनाथ ने लड़के के हाथ से ले ली । गाँव से बाहर छोड़ आने को वह साथ हो गए ।

नये जूतों ने पैर काट खाये थे । उन्हें बायें हाथ की उँगुलियों से उठाकर जब रतिनाथ आँगन से बाहर निकला; तो पीछे मुड़कर एक बार उसने धिक्की आम के जाने-पहचाने पेड़ की ओर देखा । घर के पिछवाड़े की ओर बाँस का जंगल था, रत्ती ने उस ओर भी देखा ।

आज अपने टोल-पड़ोस की एक-एक वस्तु सचेतन प्रतीत हो रही थी । लगा कि सब उसे मना कर रहे हैं—मत जाओ, मत जाओ, मत जाओ । वह तालाब, बड़दा पीपल, मौलसिरी का वह बौना पेड़, वे खेत, वे बाग, वे भाड़ियाँ, वे भुरमुट, वह बलुआहा—उन्होंने मानो चिल्लाकर रतिनाथ को मना करना शुरू किया—कहाँ जाओगे, लौट चलो, लौट चलो, लौट चलो !

नई जगह, नए लोग-बाग, नई वस्तुएँ—यह भला किसे न अच्छा लगेगा ? रतिनाथ भी उल्लास और उमंग से भरा हुआ मोतिहारी के लिए विदा होना चाहता था । मगर छुटपन से ही जिनके बीच वह रहता आया था, जिन्हें देखता आया था, जिनके रग-रग से परिचित था, उन व्यक्तियों, पशु-पक्षियों, चीटियों-मकोड़ों और यहाँ तक कि सचल-अचल सभी वस्तुओं से बिछुड़ते समय उसका हृदय रो रहा था । पैर उसके उठ नहीं रहे थे ।

गाँव से बाहर आने पर उसने पिता के दोनों पैर छू लिए । जयनाथ की आँखें छलछलला आईं ! इससे पहले रतिनाथ ने अपने बाप की आँखें कभी गीली नहीं देखी थीं । ऊपरी दाँतों से निचला होठ दबाकर ही वह अपने को रोने से रोक सका ।

पिता के हाथ से गठरी लेकर जब रत्ती चला, तो उन्होंने पाँच रुपए का एक नोट उसकी जेब में डाल दिया और चुपचाप लौट गए ।

-१९-

उस साल आम बिल्कुल नहीं फरा था। शादी-ब्याह, मूड़न-छेदन, उपनयन—संस्कारों और उत्सवों की धूम थी। शुभंकरपुर की ही बात लीजिये। वहाँ बाहर के नौ दूल्हे ब्याह करने आए थे। सात घरों में जनेउआ हुआ था। मूड़न-छेदन भी पाँच-सात बच्चों के हुए थे। गौना करके चार बहुएँ आई थीं।

बागो का भी ब्याह हुआ था, इसी आपाढ़ में। रामपुरवाली की बात रह गई। वर अच्छा मिला। काशी का साहित्य-शान्नी। बीस साल की उम्र। गेहुआ रंग। लम्बा चेहरा। नुकीली नाक, गोल-गोल आँखें। चौड़ा कपार, बड़े-बड़े कान। शिर के बाल पतले और मुलायम थे। लड़के का बाप मुजफ्फरपुर में होटल चलाता था। छोटा भाई मिडिल स्कूल में पढ़ रहा था। यह लोग हरिपुर के रहने वाले थे। शुभंकरपुर से १० कोस उत्तर बेनीपट्टी थाने में यह गाँव पड़ता था। भूमिहारों की बस्ती थी। मैथिल दो ही चार घर थे।

रामपुरवाली चाची के मायके के लोग न पड़े होते तो इतना अच्छा काम होता? होता यही कि भोला पंडित अपनी टेव के मुताबिक कहीं से कोई ठूँठ पीपल उखाड़ लाते और जिन्दगी भर बागो उसकी परिक्रमा करती रहती।

अब उमानाथ की माँ समाज से बहिष्कृत न रह गई थी। उस कुकांड को लोग अब भूलते जा रहे थे। इधर गाँव में एक तीसरा ही भूचाल उठा था। जयनारायण भा के छोटे भाई की शादी जयनगर के पास भुतही में हुई थी। जयनारायण शुभंकरपुर के उन चार-पाँच भाग्य-शालियों में थे, जो समाज के स्तंभ कहलाते हैं। और जयनारायण के पास तो कुलीनता भी थी, धन भी था। एक मौजे में दो आने की जमींदारी पड़ती थी। बैठक के सामने चार बखार थे। काठ के लम्बे नाँद में सानी-भूसा खाते हुए आठ तन्दुरुस्त बैल उनकी भरी पूर्ण

गृहस्थी की गवाही दे रहे थे। नाटे कद का हिनहिनाता हुआ भोटिया घोड़ा वैभव का ओजस्वी प्रमाण था। अपने छोटे भाई की शादी उन्होंने भुतही के जमीन्दार की एक मात्र कन्या से करवाई थी। सोने के टुकड़े जैसे दस बीघा खेत उस जमीन्दार ने अपनी लड़की के नाम लिख दिये थे। अभी कुछ दिन पहले उसकी जमीन्दारी के किसी दूसरे मौजे में किसान-आन्दोलन ने जोर पकड़ा, रैयतों ने अपनी जोत की तीस बीघा जमीन छोड़ने से साफ इनकार कर दिया। मालिक उसे पड़ोस के किसानों के हाथ बन्दोबस्त कर देना चाहता था। जो पच्चीसों वर्ष से उस जमीन को जोतते-बोते और फसल काटते आ रहे थे, वे लोग डट गये—इस पर हमारा हक है। रैयतों में से पाँच-सात घर ब्राह्मण भी थे। तनातनी बढ़ी। सरकार ने एक सौ चौआलीस दफा लगाकर जमीन को लाल साफे और लम्बी लाठी की अपनी निगरानी में ले लिया। किसानों ने सत्याग्रह आरम्भ किया। मालिक के लठैत और पुलिसवाले मिल गये। ऊपर कांग्रेसी मंत्रिमंडल था, नीचे धरती माता थी। सत्याग्रही पृथ्वी-पुत्र जब पिटने लगे, खून से तिरंगा तब लाल हो उठा। इस छोटे से महाभारत में दो कुर्मियों और एक ब्राह्मण की जान गई। किसानों को कुछ हद तक सफलता अवश्य मिली, परन्तु मालिक का ब्रह्महत्या का पाप लग गया। चाँदी और सोने का भस्म कई बड़े रोगों की अचूक दवा है। जमीन्दार बाबू ने अपना पाप धोने के लिए भागीरथी गंगा की शरण नहीं ली। कर्मकांडकेशरी वयोवृद्ध पंडित बुचन पाठक के आदेशानुसार मालिक बाबू ने कमला नदी में स्नान किया, वहीं एक पीपल के नीचे साधारण सा प्रायश्चित्त कर लिया। प्रकट रूप से कुल दस-बारह रुपये खर्च पड़े। यह दूसरी बात है कि कर्मकांडकेशरी महाशय को दस कट्ठा बढ़िया जमीन इस सिलसिले में मिली।

जयनारायण के अनुज का नाम था लक्ष्मीनारायण। इस बार जब वह ससुराल से लौटे, तो गाँव गनगना उठा—ब्रह्मबध का महा पाप

हजम करने वाले ससुर का दामाद होकर, उसके यहाँ खा-पीकर लक्ष्मी-नारायण अपने भाई की आँखों में भले ही धूल भोंकें, परन्तु शुभंकरपुर का समाज उनको माफ नहीं कर सकता। अरे राम ! ब्राह्मण की हत्या करके उस महापापी ने समूचे देश को कलंकित किया है, और अब लक्ष्मीनारायण भुतही का पाप शुभंकरपुर के माथे पर लादने आए हैं ! हरे ! हरे !!

बात बिल्कुल दुरुस्त थी। ब्रह्महत्या महापाप है, तो महापापी से संसर्ग रखना भी पाप है। लक्ष्मीनारायण जनकपुर जाने के बहाने गाँव से निकले थे और ससुराल में चार-पाँच दिन बिताकर परसों रात दबे पैर चुपचाप घर आ गए थे। फिर आज पूरे दो दिन के बाद जो यह भूचाल उठा इसमें अन्दरूनी ज्वालामुखी का काम जयदेव ने किया था। उसने अपने चारों पट्टशिष्यों को सारी योजना समझा दी और वे गाँव भर में लक्ष्मीनारायण के प्रच्छन्न पाप की मुक्तघोषणा कर आये। इन चारों में जो अगुआ थे, वह और कोई नहीं, यही हमारे भोला पंडित थे। अपने मझले लड़के (भवदेव) की शादी के बाद जयदेव जयनारायण-गुट द्वारा बार-बार अपमानित और तिरस्कृत हुए थे। अब बदला लेने का अच्छा सुयोग जयदेव के समक्ष स्वतः उपस्थित हो गया था।

जयनारायण भी मामूली अखाड़े का पहलवान नहीं था। विरोधी दल के हमलों से वह बिल्कुल नहीं घबड़ाया। प्रायश्चित्त की तो बात ही क्या, अपने छोटे भाई पर लगाये गये अभियोग को ही उसने उड़ा दिया। कहा—जिसके बाल-बच्चे मुर्गी का अंडा और प्याज लहसन खाते हैं, अशौच में केश नहीं कटाते, वह इतना बड़ा निर्लज्ज होगा, यह मैं नहीं जानता था। ईसाई की लड़की अपनी सींथ में सिन्दूर लगाती है, तो लगाए, परन्तु भुतही के हमारे उस कुटुम्ब ने ऐसा कौन सा पाप किया कि जिसका पंडित लोग प्रायश्चित्त कराते ! रैयतों की हुल्लड़बाजी को किसान-आन्दोलन कह देने से काम नहीं चलेगा। ब्राह्मण मरा सही,

मगर गोली तो सरकार बहादुर की लगी थी। इसमें लक्ष्मीनारायण के ससुर का क्या कसूर ?

फिर भी जयदेव जयनारायण के गोल में से आठ-दस परिवारों को फोड़ लेने में कामयाब रहे, इसका पता तब चला, जब कि जयनारायण के लड़के का उपनयन हुआ।

जयनाथ और दमयन्ती भी अब जयदेव के गोल में आ गये थे। ताराचरण उधर ही रहे।

भोला पंडित दामाद की विदाई के समय घर से रूठकर दरभंगा चले गए थे, उन्हें यह पसन्द नहीं था कि जमाई की विदाई में सौ रुपये से एक पाई भी अधिक खर्च किया जाय। रामपुरवाली ने नहीं माना। तीन सौ रुपये का सामान मधुबनी से उसने मँगवाया। चार जोड़ा धोती, ओढ़ने की दो चादर, दो तौलिया, हाफ जूता, दो जोड़ पैतावा, बनियाइन, कमीज, तसर का कोट, रेशमी का पाग, छड़ी-छाता, बारह आने भर सोने की अँगूठी, कम्बल, दरी, तोसक, उलैच (बिछाने की चादर), दो तकिया, फूल की बड़ी थाल, लोटा और गिलास, दाल खाने का बड़ा कटोरा, छुछोटे कटोरे (भाजियाँ के लिए), घी और चटनी खाने की दो कटोरियाँ, इसके अलावा रसोई में काम आनेवाले तमाम बरतन, पीकदान।.....इतनी सारी चीजों से रामपुरवाली ने जमाई की विदाई का आयोजन किया। भोला पंडित को यह असह्य लगा, गाँव से टल गए।

जमाई बाबू विदा हुए, तो उनके साथ भार लेकर पन्द्रह भरिया गए। दही, केला, मिठाई, पान-सुपारी, मेवा-मखान, बहुत कुछ सामान था। ऊपर लिखी चीजें तो थीं ही।

दूध, दही, घी, मछली आदि खिला-पिला कर रामपुरवाली ने दूल्हे की देह को लालबुन्द कर दिया था। इक्कीस रोज रहे थे वह।

रतिनाथ बागो की शादी के सात दिन बाद निकला था। अपनी बाल-सखी के इस रूपान्तर से रत्ती को बड़ी प्रसन्नता हुई थी।

चतुर्थी* (सुहागरात) के बाद, अगले दिन थोड़ी देर के लिए दोनों मिले थे। किसी काम से वह चाची के यहाँ आई थी। रत्ती अपने ओसारे पर बैठा 'कन्या-दान'† पढ़ रहा था। प्रसंग बहुत रोचक था। चरितनायक की संभावितवधू बुच्ची दाई की मुग्धताओं पर मस्त होकर रतिनाथ उस उपन्यास को सरसर पढ़े जा रहा था कि पीछे से आकर किसीने अपने छोटे-छोटे मृदु-सुरभि हाथों से उसकी आँखें भाप दीं। एक हाथ से उपन्यास पकड़े रहकर, दूसरे हाथ से रतिनाथ इस चोर का हाथ टटोलने लगा। लाह की पतली चूड़ियों पर उँगलियाँ पड़ते ही वह खिलखिला उठा। बोला—धत् तेरी की ! बागो, कैसे आई ?

पीछे से हाथ हटाकर बागो सामने हो गई थी। पूछा था—अब तो तुम मोतिहारी में पढ़ोगे, आओगे कब ?

दुर्गापूजा की छुट्टी में—रत्ती ने कहा था।

इसके बाद देर तक वे एक दूसरे को ताकते रह गए थे। इससे पहले दोनों जब मिलते थे, तो बड़ी देर तक गप-शप चलती रहती। मगर उस दिन न रतिनाथ के मुँह से कुछ निकला और न बागो के मुँह से।

—२०—

आषाढ़ बीत चुका था।

खेतों में धान के पौधे लहलहा रहे थे। बरसात भलीभाँति शुरू हो गई थी। धान रोपने के दिन थे। क्यारीनुमा खेत पानी से भरे थे।

* विवाह के बाद चौथी रात। पहले की तीन रातें वर-वधू को ब्रह्मचर्य के कड़े नियंत्रण में बितानी पड़ती हैं।

† मैथिली भाषा में लिखित एक लोकप्रिय उपन्यास।

(हरिमोहन भा)

आज रात फिर बारिश हुई थी, खूब हुई थी ।

जयकिशोर सुबह-सुबह उठे और लोटा लेकर दिशा-फराकत के लिए घर से निकले । तरकुलवा में सभी जाति के लोग बसते थे । दुसाध, मुसहर, डोम थे तो धुनिया, जुलाहा भी थे । लेकिन बाभन, राजपूत, बनिया, ग्वाला वगैरह गाँव के एक ओर थे । मुसलमान दूसरी ओर । छोटी जाति वाले उसके बाद—सड़क के किनारे लंबाई में बसा था गाँव । आठ-दस पोखर थे । कुछ बस्ती के सामने और कुछ पीछे की ओर । एक का नाम 'बड़ी पोखर' था । जयकिशोर ने बचपन में इसी पोखर में तैरना सीखा था । भादों-आसिन की तपती दुपहरियों में छाता लगाए इसीके बांध पर घंटों बैठकर काँटों में मछलियाँ फँसने की प्रतीक्षा की थी । बीसों बार इसके छाती भर पानी में घुसकर नीले-सफेद कमल वह तोड़ लाये थे । इन्हीं कारणों से यह पोखर उन्हें प्रिय था ।

कान पर जनेऊ चढ़ाए, हाथ में लोटा लिये जयकिशोर जब बड़ी पोखर के घाट पर हाथ मटियाने आये, तो शंकर बाबा मिल गये । वह बाँस की छतरी (मेघडम्बर) लगाये हुए थे, कछौटा मार कर बड़े ही गौर से उसनाले की ओर देख रहे थे कि जिसमें से बरसाती पानी आ रहा था । तालाब की मछलियाँ रात में काफी निकल चुकी थीं, लोगों ने खूब पकड़ा था । पोते ने ज़िद की तो अब शंकर बाबा भी आये थे । अभी तक दो पाठियाँ हाथ लगी थीं, कुछ और हो जातीं तो अच्छा था.....जयकिशोर को देखते ही बोले—किशोर, तुम्हें इनका शौक नहीं रहा क्या ?

वाह, क्यों नहीं—जयकिशोर ने कहा—मछलियों का शौक भी कर्मा जा सकता है ? मगर, कौन रात भर इनके लिए परेशानी उठाये ! चरवाहे ने कुछ मछलियाँ पकड़ी होंगी ज़रूर । हमारे यहाँ यह सब वही करता है । तालाब से मछलियाँ पकड़ना, बाग में से

ग्राम तोड़ लाना, हाट से साग-भाजी ले आना.....सब वही करता है। दूसरा है ही कौन ?

इतना कहकर जयकिशोर बाबू पानी के किनारे रखे काले सिल पर बैठ गये और हाथ मटियाने लगे। इस बीच में शंकर बाबा को एक पोठी और दिखाई पड़ी, वह नाले के छल छल करते पानी में उस मछली को पकड़ने के लिए लपके। पैर लगाकर छपाकू स पानी उछाला, निशाना ठीक बैठ था। पोठी नाले से बाहर आकर उछल रही थी। हरी-हरी दूब पर चाँदी-सी सफेद और चमकदार वह छोटी मछली जयकिशोर का बहुत बढ़िया लगी। बाबा ने उसे उठाकर जोर से पटक दिया, वह निष्प्राण हो गई। उछल-कूद बंद हो जाने पर भी दूब पर वह सुन्दर तो लग ही रही थी। बाबा ने कहा—बस, एक और हो जाय।

जयकिशोर हाथों में तीन बार मिट्टी लगा चुके थे, अब लोटा माँज रहे थे। वह शंकर बाबा की ओर नज़र फेकते हुए बोले—बस, चार ही पोठी ! सारा परिवार इतने से ही तृप्त हो जायगा ?

बाबा की निगाह फिर छल-छल करते पानी पर जम चुकी थी। उन्होंने कहा—मुझे अब इन वस्तुओं का आवेश नहीं है। बुचनू का हट था, उसके लिए तीन-चार काफी होंगे।

कि इतने में एक बड़ा-सा भींगा तालाव से निकल कर बाहरी दुनिया की सैर करने के लिए नाले के रास्ते पर आगे बढ़ा। बाबा ने देख लिया। उसका मटमैला रंग उनकी आँखों को धोखा नहीं दे सका। वह फिर उसी भाँति झपटे। इस बार अँजुरी से पानी उछाला उन्होंने। भींगा नाल से बाहर आ पड़ा। बाबा ने उसे भी दे पटका। जयकिशोर यह सब देख रहे थे, कुत्ली कर चुके थे। अब उन्हें भिंडे पर बैठ कर दाँतन करना था। बाबा से कहा—अब तो आप जायँगे ?

एक-आध और हो जाय तो क्या हर्ज है ?—शंकर बाबा गुन-गुनाकर बोले । जयकिशोर ने सोचा—इनका लोभ बढ़ता जा रहा है । मनुष्य जब प्राप्तव्य पा जाता है तब उसकी दृष्टि आगे की ओर इतनी तेज़ी से क्यों फिसलती है ?

बड़ी दोखर के भिंडे पर उत्तर की ओर मुँह करके जयकिशोर दाँतन करने बैठे । आगे खेतों में धान के हरे-हरे पौधे लहरा रहे थे । उनसे परे आमाँ के नील-निविड़ कुञ्ज थे ! उनसे भी परे सुदूर उत्तरी आकाश में हिमालय को धवल-धूमिल चोटियाँ थीं जो उगते सूरज की पीली किरणों से उद्भासित होकर स्वर्ण-शृंग-सी लग रही थीं । जयकिशोर ने इसी भाँति यह दृश्य कई बार देखा है और यहीं बैठ कर । किन्तु आँखों को परितृप्ति नहीं हुई । हिमालय क्या इतना नजदीक है ? उन्हें विश्वास नहीं होता फिर भौगोलिक जानकारी चकोटी काटती कि दरभंगा जिले की उत्तरी सीमा यहाँ से चार कोस पर है, आगे नेपाल है । यह हिमालय नेपाल ही में तो पड़ता है । हाँ, ठीक तो है । फिर वह स्वप्न देखने लगे कि पेन्शन मिल जाने पर जब घर बैठेंगे तब रोज यह दृश्य देखने को मिलेगा । वह कभी विहार छोड़ बाहर नहीं गये फिर भी अपनी मातृभूमि की प्रशंसा करते थकते नहीं । सुजलां सुफलां मलयजशीतलां फुल्ल कुसुमित द्रुमदलशोभिनीं शुभ्रज्योत्स्ना-पुलकितयामिनीं सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीं सुखदां वरदां—मातृभूमि को बंदना के लिए वंगीय वंकिमचन्द्र ने इन विशेषणों का उपयोग किया है । जयकिशोर का दावा था कि हमारी मातृभूमि मिथिला भी ठीक इन्हीं विशेषणों की अधिकारिणी है* । इस सम्बन्ध में दक्षिण विहार के अपने भाइयों से वह उलझ पड़ते ।

जयकिशोर के तीन बच्चे थे, दो लड़के और एक लड़की । सपरिवार वह प्रवास में रहते । बहुत कोशिश की कि माँ भी साथ रहे मगर बुढ़िया ने मंजूर नहीं किया । ज़िद करने पर वह कहती—जनम भर कहीं नहीं गई और अब बुढ़ापे में क्यों कुलदेवता और ग्रामदेवता

की पूजा मुझसे छुड़वाओगे ? पर्व और त्यौहार के दिनों में देवता-पितर आवेंगे, आँगन-घर सूना रहेगा तो निराश लौट जायेंगे। यह सब सुनकर जयकिशोर चुप हो जाते। श्रद्धालु माँ के दिल को दुखाना इस शिक्षित पुत्र को अच्छा नहीं लगता। दूसरी बात भी थी। जायदाद काफी थी, दूसरे पर निगरानी का भार सौंप देने से निश्चित था कि उसमें चूहे लग जाते। जयकिशोर की नौकरा मजबूर की नौकरी नहीं थी। वह थी खाते-पीते आदमी द्वारा शौक से की जाने वाली नौकरी। जिला स्कूल में हेड पंडितार्ई या भी मामूली नौकरी नहीं कहलायेगी, उसका सम्बन्ध सीधे सरकार बहादुर से रहता है। औरत उन्हें अच्छी मिली है। उसका कुल-शील भी अच्छा है, चेहरा मुहरा भी बढ़िया है। गौना के बाद कई साल तक वह अपनी सास के साथ ही रही। जब जयकिशोर की नियुक्ति रांची के जिला स्कूल में हुई तब से रूपरानी भी साथ रहती आई है। यह नाम सास का रखा हुआ है। मायके का नाम था शशिमुखी। भले घर की सभी औरतों के दो-दो नाम हुआ करते हैं—एक समुराल का और दूसरा मायके का।

पिछले दिन संध्याकाल रतिनाथ तरकुलवा पहुँचा था, अकेला। इधर वह कई बार शुभंकरपुर से तरकुलवा आ-जा चुका था। इसलिए जयनाथ ने अकेले ही आने दिया।

रतिनाथ यद्यपि जयकिशोर का अपना भांजा नहीं था फिर भी वह उसे बहुत मानते थे। उसके गुणों पर मुग्ध थे। वह बहुत कम बोलता। फुर्ती से काम करता। कैमजोर और दुबला रहने पर भी सभी प्रकार के कामों के लिए तैयार रहता। पढ़ने में तो खैर तेज था ही, अच्छर भी उसके सुन्दर होते थे। खाते-पीते समय कभी कोई शिकायत नहीं कि यह खाऊँगा और वह नहीं। रसोई भी करना उसे आता था। एक प्रवासी के लिए यह बहुत बड़ा गुण है कि वह खाना पकाना जाने।

जयकिशोर के जाने में तीन दिन बाकी थे। ग्राम इस बार नहीं फरा था। फिर भी जिनके पास कलमी ग्राम के पेड़ थे उन्हें कुछ न कुछ हाथ लगा ही। कलकतिया थोड़ा-बहुत हर साल फलता है। मालदह और कृष्णभोग के बारे में ठीक यही बात नहीं कही जा सकती। और वर्षों की भाँति इस वर्ष भी सौ डेढ़ सौ ग्राम जयकिशोर साथ ले जाना चाहते थे। माँ को भला इसमें क्या आपत्ति होती? उसने कहा—यहाँ खाओ तब भी और वहाँ खाओ तब भी, बराबर है। कौन है खाने वाला? बच्चों को खाते देखती हूँ तो यों ही मेरा मन अघा जाता है। नहीं तो अकेले कोई अच्छी चीज खाना मेरे लिए पहाड़ हो जाता है।

रूपरानी ने कहा—ग्राम मोतिहारी में भी है, क्या होगा ले जाकर? यहाँ रहेगा तो पड़ोस और समाज के लोग खाएँगे। जस देंगे।

मगर माँ ने बहुत जोर दिया—कितना भी ले जाओगी, यहाँ के लिए घटेगा नहीं। इस गाँव में सभी के यहाँ अपने-अपने पेड़ हैं। थोड़ा-बहुत ग्राम सभी के पेड़ों में फरे हैं। कुछ ने तो बेचा भी है। तुम वहाँ खरीद कर खाओगी और यहाँ सड़ेंगे सो कैसे होगा?

आगिर दो सौ ग्राम दो खाँचों में भरकर ऊपर से एक एक खाँचा डालकर उन्हें मजबूती से सी दिया गया। इन कामों में जयकिशोर की माँ बहुत चतुर थीं। वह वास्तव में नारी के रूप में पौरुष की अवतार थीं। जयकिशोर मुक्तकंठ हो कहा करते—ऐसी माँ और किसकी होगी? कभी किसी काम के लिए मुझे नहीं कहा। मैं राजकुमार की तरह रहता आया हूँ। हाथ से कदाचित् ही एक तिनका भी उठाना पड़ा हों! और, जयकिशोर बाबू का ऐसा कहना अनर्गल नहीं था। उनकी माँ घर के सारे काम-काज स्वयं ही करती-कराती थी। खेती बाड़ी के लिए कभी उसने कारपदाज नहीं रखा। कभी-कभी भाई मदद कर जाता था। तरकुलवा में खेतमजदूर सुलभ थे। जयकिशोर की माँ ने दो खेतमजदूरों को पाँच पाँच कट्ठा खेत दे दिये थे। वे पिशाच की

तरह कड़ी मेहनत के सारे काम करते। धान रोपने के दिनों में रोज पाँच-पाँच सात-सात दस-दस तक मजदूर लगे रहते। उन्हें अढ़ाई सेर धान और पेट भर खाना मिलता। दाल-भात तरकारी और अचार। छोटी जात के उन गरीब और भूखे बनिहारों (खेत मजदूरों) के लिए जयकिशोर बाबू के खेतों में धान रोपने के ये दिन महोत्सव के दिन थे, पुण्याह थे। इसका असर पड़ता गृहस्थी पर। सबसे पहले जयकिशोर के ही खेतों में धनरोपनी हो जाती, औरों की पारी पीछे आती। सोहनी करने (निराने) और फसल कटाने में भी यही सिलसिला रहता। यह सब उस वृद्ध महिला का ही पौरुष था नहीं तो प्रवासी पंडित की खेती-बाड़ी का नमूना देखना हो तो शुभंकरपुर के जनार्दन पंडित के खेतों को देखिये। खुद कलकत्ता रहते हैं। बेटा रांची स्कूल में मास्टर है। परिवार को साथ रखता है। बेटा-पतोहू रांची में। दो छोटे लड़के पटना में पढ़ते हैं। घर पर पचासी साल की वृद्धा चाची हैं। जायदाद काफी है मगर यह सब खबास, नारायण मड़ड के भाग में लिखा है। भैंस का दूध वह पीता है। मालभोग और कनकजीर का भात वह खाता है। बगिया का चम्पा केला, मालदह आम, बनारसी अमरूद—सब उसीके बालभोग में चला जाता है। बाप-दादे के जमाने का रजाशाही पलंग। पंडित नहीं हैं तो उस पर टाँग फैलाकर और कौन सोएगा? सोता है नारायण खबास? चाची बेचारी न जीती हैं न मरती हैं, हुकुरहुकुर करती हैं। रांची से जब जब पोता आता है, अपनी इस दादी के लिए एक न एक रसोइया बहाल कर जाता है। मगर वह रसोइये को दस पन्द्रह दिन से ज्यादा टिकने नहीं देतीं। जिन्दगी भर वह अकेली ही रहीं, अकेले पकाकर अकेले ही खाया। अब उन्हें दूसरे के हाथ की रसोई कैसे पसन्द आवे? आँगन में चारों तरफ चार घर हैं। एक में चाची का डेरा है। दूसरे में पलंग वगैरह है। तीसरे में धान-चावल चूहा भीगुर और नेवले रहते हैं। चौथा खाली पड़ा है जिसमें धान की भुस, टूटी संदूक,

पुराना पिटारा वगैरह सुरक्षित है । कुन्ती और नीलो इसी घर में ब्याती हैं । टोल भर की सार्वजनिक कुत्ती का नाम जाने कब किसने 'कुन्ती' रख दिया ! नीलो बिल्ली थी ! कुन्ती के प्रसव का सुनिश्चित स्थान पिटारा है और नीलो रानी टूटी संदूक में बच्चे जनती है । जनार्दन पंडित का घर-आँगन किसी अभागे जमींदार की उजाड़ कचहरी जैसी लगता है ! बिना देख-भाल की घर-गिरस्थी का यही हाल होता है ।

जयकिशोर को अपनी माँ का बहुत बड़ा अभिमान था । कभी उन्होंने माँ की किसी बात का प्रतिवाद नहीं किया । तीसरे साल जब वह घर आए तो किसी ने गौरी के उस कुकांड का सारा समाचार जयकिशोर से कहा और बारम्बार कहा परन्तु वह उत्तेजित नहीं हुए । समाज में एक तरुणी विधवा को किन परिस्थितियों का मुकालवा करना पड़ता है, इस बात को वह भली-भाँति समझते थे । थोड़ा क्षोभ और संकोच जयकिशोर को अवश्य हुआ परन्तु उसे उन्होंने दूसरे ही रूप में प्रकट किया । प्रतिवर्ष की भाँति उस साल भ्रातृद्विताया में अपनी बहन के यहाँ वह नहीं गए, बस । माँ को समझाने के लिए कोई बहाना ढूँढ़ लिया ।

रतिनाथ को स्नेह भाजन बनाकर जयकिशोर उसे अपने साथ रखने के लिए तैयार हुए थे इसके अन्दर उनका भगिनी प्रेम ही काम कर रहा था । उमानाथ को वह पढ़ा नहीं सके थे तो इसमें उनका क्या दोष ? रतिनाथ को गौरी कितना मानती थीं, यह जयकिशोर को खूब अच्छी तरह मालूम था । रत्ती की प्रतिभा देखकर उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि यह लड़का उमानाथ की तरह मुझे बहन की दृष्टि में हल्का नहीं बनाएगा ।

स्कूल तेरह जुलाई को खुल रहा था । एगारह और बारह को मंगल और बुधवार पड़ते थे । उत्तर की तरफ जाने में दिशा-शूल

होता । इसीलिए जयकिशोर आपाढ़ शुक्ल पंचमी सोम को सपरिवार मोतिहारी के लिए चल पड़े । एक अहीर का लड़का—ठकवा-साथ रहता था । तीन बच्चे, नौकर, रतिनाथ और दो जने खुद । कुल 'मिलाकर इस बार परिवार में सात प्राणी हो गए थे । तरकुलवा से राजनगर । काम एक ही बैलगाड़ी स चल गया ।

भीड़ के कारण औरत और बच्चों को जनाना डब्बे में बँठा दिया गया था । सुबह की ट्रेन थी, रतिनाथ ने सोचा, चलो अच्छा हुआ । देखते चलेंगे । तारसराय तक, नहीं दरभंगा तक, उसका देखा हुआ था ही । उसके आगे रत्ती सहस्राक्ष बनकर चलती गाड़ी में से आस-पास के दृश्य देखने लगा । कोसों तक फैले धान के हरे भरे खेत । उनकी लहराती हरियाली क्या थी, तरंगित समुद्र का ही हरा संस्करण था । लेकिन रतिनाथ ने समुद्र नहीं देखा था । हाँ, बाढ़ के दिनों में परसौनी के पच्छिम, जब मोहना चवर पानी से भर जाता तो लोम कहते—मोहना तो समुद्र हो गया है । इससे समुद्र का एक कल्पित नकशा उस किशोर के दिमाग में था अवश्य फिर भी धान के खेतों की कोसों लहराती हरियाली को हरा समुद्र कह देना उसके बूत की बात नहीं थी । असीम हरीतिमा के इस भव्य दृश्य से रत्ती को आँखें अघाती नहीं थीं । इधर-उधर बैठे-खड़े मुसाफिरों के गुल गपाड़े उसका ध्यान भंग करने में असमर्थ थे । गाड़ी हड़-हड़ाती हुई जब एक पुल को पार करने लगी तो ठकवाने चकोटी काटकर कहा—रत्ती बाबू, जानते हैं, कौन नदी है ?

नहीं तो—रतिनाथ ने चौंककर कहा । ठकवा बोला—वाग्मती है । रत्ती को किसी कवि का एक पद याद आया जिसमें कहा गया था—वाग्मती, तू धन्य है ! तेरा पानी विद्यापति के श्वास से सुरभित है और तेरे तट के बालुकाकण दार्शनिकों की दृष्टि से भास्वर । तेरा प्रवाह जिस भूमि पर से एक बार भी गुजर जाता है वह सदा के लिए रत्न-गर्भा बन जाती है । वाग्मती, तू धन्य है । शरद् ऋतु की पूर्णिमा के

इस निशीथ में मन करता है मैं अपनी देह तेरे प्रवहमान वत्स पर छोड़ दूँ.....सोचते-सोचते वह भ्रूणक्रियाँ लेने लग गया ।

एक दचके के साथ नींद टूटी, तो गाड़ी समस्तीपूर आ चुकी थी । लोग धड़ाधड़ उतर रहे थे । रतिनाथ भी उतरा । उसकी छोटी सी गठरी मामा-मामी के विस्तरों में डाल दी गई थी । उस ओर से वह निश्चिन्त था । इतमीनान से उतरा और मामा के पास जाकर खड़ा हो गया ।

बहुत बड़ा स्टेशन । लोगों की अपार भीड़ । ट्रेनों की कमी नहीं । पान-सिगरेट-बीड़ी वालों का कोलाहल । दुनिया के इस विचित्र पहलू से रतिनाथ आज तक अनजान था । बाप, चाची और साथियों के विछोह से जो दिल अभी तक भारी-भारी सा था वह अब हल्का होता जा रहा था । नई जगह, नये लोग, नये नज़ारे । स्मृतिपट पर से पिछली रेखाएँ मिटती जा रही थीं, रंग तो धुँधला पड़ ही चुका था । रत्ती को ख्याल आया - यह तो समस्तीपूर का हाल है ! और, कलकत्ता कितना बड़ा शहर होगा ? कहते हैं, वहाँ पन्द्रह लाख लोग रहते हैं । बड़ा होने पर भैया के साथ मैं भी कलकत्ते जाऊँगा.....

कि इतने में मुजफ्फरपुर की गाड़ी आ धमकी । सब उसमें सवार हुए । भीड़ कम थी । पूसा रोड, ढोली, सिलौट और चौथा स्टेशन मुजफ्फरपुर । रत्ती गिनता गया था । वहाँ पहुँचते-पहुँचते बारह बज गए । लाईन के दोनों ओर आम और लीची के बड़े-बड़े बाग थे । धान के खेत भी थे मगर उतने हरे-भरे नहीं । लीची का मौसम बीत चुका था और आम फरा ही न था । फिर भी स्टेशन पर 'बथुआ' आम विक रहे थे, रुपये में बारह । वह उन लोगों के लिए अलभ्य वस्तु नहीं थी क्योंकि दो सौ बड़े और बढ़िया आम साथ जा रहे थे ।

मोतिहारी की गाड़ी में अभी कुछ विलम्ब था । दरी बिछा कर श्रेटफारम पर वे बैठ गए । वहीं खाना-वाना हुआ । जयकिशोर पड़

रहे तो ठकवा ने उनके पैर और जाँघ में मुकियाँ लगाना शुरू किया। मुकियाँ लगवाते-लगवाते उन्हें नींद आ गई।

छोटी बच्ची के आगे से पूड़ी उठा लेने के कारण सड़ी दुमवाले काने कुत्ते को रतिनाथ ने एक लात लगाया। वह आँउ-आँउ-आँउ कर उठा, तो जयकिशोर की आँख खुली। बिस्तर बाँध-बूँधकर तैयार हो गए। थोड़ी देर में पहलेजा घाट से गाड़ी आई, उसी पर सब सवार हुए। तीन बज रहा था। गाड़ी के चलते ही रतिनाथ को नींद आ गई।

आठ बजे रात को ट्रेन मोतिहारी पहुँची।

२१

सूर्यदेव मैट्रिक की परीक्षा में दो बार फेल हो चुका था। मुजफ्फरपुर के सीतामढ़ी डिवीजन में उसका घर पड़ता था। जयकिशोर ही उसके अभिभावक थे। स्टेशन के उत्तर गुमती के नजदीक उनका डेरा था। पास ही एक मंदिर था। बीच में मंदिर, चारों ओर धर्मशाला। यह सब बकुलहर मठ की मिल्कियत था। पिछले साल महंत जी आए तो जयकिशोर का उनसे परिचय हुआ और उसी परिचय का फल है कि यह धर्मशाला और मंदिर अब जयकिशोर की निगरानी में हैं। इनको इससे और कुछ नहीं, पर एक फायदा जरूर था कि वक्त बे-वक्त दो-चार आदमियों को वहाँ ठिका देते।

धर्मशाला में पचीसों कोठरियाँ थीं। बहुधा वे खाली ही पड़ी रहतीं। खाली रहने के दो कारण थे। एक तो वह शहर से बाहर पड़ती थी और दूसरा यह कि मोतिहारी कोई बड़ा शहर तो है नहीं। जिला चम्पारन का सदर होने से ही इसका थोड़ा-बहुत नाम है। नहीं तो, चम्पारन में प्रमुख नगर अगर है तो वह बेतिया है। सभी दृष्टि से वह मोतिहारी से अव्वल है।

सूर्यदेव उसी धर्मशाला की एक बढ़िया कोठरी में रहता था। यह पंडित जयकिशोर की ही कृपा थी। एक बड़ी तख्तपोश थी उस कोठरी में, उसी पर सूर्यदेव दरी बिछाकर सोता था। बीस साल की उम्र। साँवला रंग। दुहरा बदन। लम्बा कद। सूअर के जैसे खड़े-खड़े बाल। खाते-पीते घर का लड़का था। शादों हो चुकी थी, मगर समुराल जाना बाप ने उसके लिए वर्जित कर रखा था। शादी करने वालों में, यानी दूल्हे के बाप और दुल्हन के बाप में गहरा मनमुटाव हो गया था—लड़के को मोहन माला (सोने का कंठहार) नहीं दी गई थी, वस इसी पर ।.....सूर्यदेव अपनी नवोढ़ा से उतना ही अलग था जितना कि चाँद कुमुदिनी से। पर वे नजरों से तो भला एक दूसरे के सामने रहते हैं। लड़के का जी न पढ़ने में लगता था न खेलने-कूदने में।

उस रात स्टेशन से जब मकान आए, तो जयकिशोर ने कहा—रतिनाथ, आज तुम सूर्यदेव के साथ सो रहो। उसकी चौकी बड़ी है और मराहरी भी चौड़ी है। कल दूसरा इन्तजाम कर देंगे।

सूर्यदेव भी वहीं था। ऐसा आसर कई बार आया है। नवागंतुक विद्यार्थी को बोर्डिंग में सीट नहीं मिलती, तो वह पंडित जयकिशोर के सुपुर्द किया जाता। पंडित जी इसी धर्मशाला में उसके रहने का प्रबन्ध कर देते। और न तो दो-चार दिन नया लड़का सूर्यदेव के ही साथ रह लेता।

रत्ती खा-पीकर सोने आया।

नई और अपरिचित जगह में जल्दी से नींद नहीं आती। सूर्यदेव ने परिचय के रथ को आगे धकेलने के लिए बात छेड़ी, मगर रतिनाथ ने हर सवाल का सीधा-सीधा जवाब दिया और अपनी ओर से कुछ न पूछा। परिचय और मित्रता समयस्कां में ही शीघ्रता से होती है। यहाँ एक था बासका और दूसरा था पन्द्रह का तो फिर हृदय के कबाट फोरन कैसे खुल जाते ?

रतिनाथ को नींद आ गई, परन्तु वह गाढ़ी नींद नहीं थी। सोते समय मालूम हुआ कि कोई धीरे-धीरे उसकी जांघ पर हाथ फेरने लगा है। लड़के की आँख खुल गई और वह सावधान हो गया। देखा कि पास सोने वाला उससे बिल्कुल सट रहा था। यद्यपि बिस्तरा खूब चौड़ा था। रत्ती के जागने से सूर्यदेव एकदम निश्चेष्ट पड़ गया। थोड़ी देर में रतिनाथ को फिर नींद आ गई। अब सूर्यदेव ने अपनी एक जाँघ लड़के की कमर पर रख दी थी। इस बार रत्ती को लगा कि कोई उसके जननेन्द्रिय को उँगली से छेड़ रहा है साथही पीठ की ओर हल्का धक्का भी दे रहा है। रतिनाथ सतर्क हो गया। वह हाथ उसने हटा दिया और करवट बदल ली। उसे जयकिशोर पर गुस्सा आ रहा था मन ही मन कि राक्षस का साथ कर दिया, सोना हराम कर रखा है ! वह उठकर बाहर आ जाना चाहता था कि सूर्यदेव ने उसकी मुट्ठी में दो रुपये डालकर शान्तिपूर्वक लेटे रहने का इशारा किया। अँधेरा था, इसलिए संकेत का काम थपकियों से लिया गया था। यह रुपया तो रतिनाथ को पागल बना देने के लिए काफी था। उसके बदन में आग लग गई। अँगनई में मन्दिर था, उसमें भगवान् लक्ष्मीनारायण सो रहे थे। कोठरी का किवाड़ा खुला था, मन्दिर साफ नजर आ रहा था। रत्ती विस्तरे पर उठ बैठा। मसहरी में से हाथ बाहर निकालकर खूब जोर से उसने चाँदी के व दोनों रुपये फेंक दिये मन्दिर की ओर और कहा—हे लक्ष्मीनारायण ! हे भगवान् ! तुम साक्षी रहना। इतना कह कर कोठरी से निकल आया। धर्मशाला से बाहर एक कुआँ था। वही एक पेड़ के नीचे टूटी चौकी पर बैठकर लड़के ने वह रात बिता दी।

सुबह जयकिशोर ने पूछा—कैसी नींद आई रत्तो ?

उसने कहा—सूर्यदेव से पूछ लीजिए।

जयकिशोर ने समझा, मच्छरों ने काटा होगा। बात खतम हो गई। मोतिहारी आते ही सबसे पहली शिद्दा रतिनाथ को जो मिली वह

यही थी। भ्रम के मारे बहुत दिनों तक सूर्यदेव ने उसकी तरफ भर आँख देखा तक नहीं।

दूसरे दिन उसी धर्मशाला की एक छोटी-सी कोठरी रतिनाथ को मिली। वह उसी में रहने लगा।

मोतिहारी में संस्कृत का एक अच्छा विद्यालय था। अध्यापक थे पंडित दूधनाथ तिवारी व्याकरणाचार्य। जयकिशोर स्वयं भी कभी-कभी रत्ती को पढ़ाते थे। रतिनाथ का पढ़ने में मन खूब लगता था। काव्य और व्याकरण, यही दो विषय थे। व्याकरण वह विद्यालय में पढ़ आता, काव्य जयकिशोर पढ़ाते।

विद्यालय शहर के बीच में पड़ता था। पढ़ने वाले बीस से अधिक न थे। पंडितजी को बीस रुपये मासिक मिलता था। कुछ अनियमित रूप से मारवाड़ी लोग भी दान दे दिया करते। बात यह है कि संस्कृत पाठशाला के अध्यापक और विद्यार्थियों के प्रति धनी समाज का वही दृष्टिकोण रहता है जो कि पिंजरापोल के प्रति सेठों का। सड़े-सूखे आम, रही चादरें, खुरदरे कम्बल, धुन-लगा अनाज, फटा, पुरानी किताबें—इन वस्तुओं का दान और कौन लेगा ?

विद्यालय के पास ही कमला नेहरू-पुस्तकालय था। वहाँ दैनिक आज, सरस्वती, बालक, योगी, विश्वभिन्न आदि कई अखबार आते थे। रतिनाथ उन्हें पढ़ना पसंद करता था। मासिक पत्रों ने उसकी रुचि को उपन्यासों की ओर मोड़ दिया।

जयकिशोर ही उसे लाये थे, इसलिए खाना-कपड़ा वही देते थे। एक संस्कृत प्रेमी जमींदार ने अपने छोटे लड़के को पढ़ाने के लिए अपने यहाँ एक विद्यार्थी रखना चाहा। उसने जयकिशोर से यह बात कही। उन्होंने रतिनाथ को उसके यहाँ रख दिया। खाना-कपड़ा और रहने की जगह अब सभी कुछ रत्ती को वह जमींदार ही देने लगा। बदले में जमींदार के लड़के को संध्या, गीता आदि पढ़ाना पड़ता।

लड़के की उम्र थी बारह साल की। वह देगने में खूबसूरत था, पढ़ने में मंद।

यह जमींदार महाशय जिला गोरखपुर के कोई दूबे थे। मोतिहारी शहर से डेढ़ मील उत्तर उनका मौजे था। दो सौ बीघा काश्तकारी भी थी। चम्पारन की जमीन खूब उपजाऊ है, वहाँ की मामूली मिट्टी सोना उगलती है। फिर यह दूबे तो जमींदार भी थे और काश्तकार भी। इस साल वर्णाश्रम स्वराज्यसंघ (काशी) के किसी महोपदेशकने उन्हें इतना प्रभावित किया कि अपने कनिष्ठ पुत्र को संस्कृत की शिक्षा दिलाने का आपका निश्चय वज्र संकल्प बन गया, इसीलिये एक गरीब विद्यार्थी को अपने परिवार में शामिल करके उससे लड़के को पढ़ाना चाहते थे।

शुभंकरपुर के जीवन से मोतिहारी के इस जीवन की कोई तुलना हो ही नहीं सकती। यहाँ नागरिकता का वातावरण था। रतिनाथ की प्रतिभा खिल उठी। संस्कृत के साथ ही हिन्दी में भी उसने योग्यता हासिल करना अपना लक्ष्य बनाया। संस्कृत के लिए जयकिशोर थे, विद्यालय था। हिन्दी के लिए पुस्तकालय था और अलबार थे। कठोर और रूढ़ प्रकृति के पिता का नियंत्रण हटते ही रतिनाथ स्वतंत्र हो उठा। स्वतंत्र नहीं, स्वच्छंद कहना चाहिए। इस स्वच्छन्दता से उसके अंदर दो दुगुण प्रवेश कर गये। एक तो पाठ्य-पुस्तकों के प्रांत अरुचि, दूसरा कुसंगति। पाठ्य-पुस्तकों के प्रति अरुचि ने अधिक से अधिक उपन्यास, काव्य और नाटक पढ़ने का रूप धारण किया, और कुसंगति ने अस्वाभाविक व्यभिचार का। जमींदार का लड़का खूबसूरत था ही, रतिनाथ उसकी सुन्दरता पर मुग्ध रहने लगा। दूबेजी (जमींदार) का आदेश हुआ—विद्यार्थी जी, तुम दोनों को एक अलग कमरा देता हूँ। उसीमें सोया करो। आपस में तुम लोग देववाणी (संस्कृत) में ही बातियाया करो। बस, फिर क्या था? दोनों किशोर, दोनों राम-

लक्ष्मण साथ रहने लगे। उनका सोना-जागना, उठना-बैठना, खाना-पीना सब साथ चलता। परन्तु उनमें से एक अभावों-अभियोगों की सीमान्त भूमि से आया था और दूसरा था विलासिता के वातावरण में पनपने वाला। उस लड़के का नाम था नरेश। अपने पिता के कठोर शासन के अनुसार आजकल वह ब्रह्मचारी का जीवन बिता रहा था। न तो सिर में वह तेल डाल सकता न आँखों में मुँह देख पाता और न कंघी का इस्तेमाल कर सकता। जूता तक जमींदार साहब ने उसके लिए वर्जित कर रखा था। रतिनाथ के लिए यह त्याग कोई नया अभ्यास नहीं था, बल्कि एक आसान खेल था। मगर नरेश की माँ को अपने पति का यह पागलपन कतई पसन्द न था। वह बीच-बीच में लड़के के शिर में बंगाल केमिकल (कलकत्ता) का सुवासित तेल डाल देती, शायद नारियल का। खदर की मोटी धोती और मोटा कुर्ता उतरवा कर मिल की महीन धोती और नफीस कमीज पहना देती। पैसे देकर रतिनाथ का साथ कर देती, सिनेमा देखने के लिये। यह सब तब होता जब कि दूबेजी गोरखपुर गये होते। नासमझ जाहिल और दुर्व्यसनी नौकर बड़े घर के लड़के को कभी-कभी बचपन में ही बिगाड़ देते हैं और ऐसा ही नरेश के साथ हुआ था। एकान्त और सहृदयता का परिणाम यह हुआ कि रतिनाथ अपने को बहुत दिनों तक रोक नहीं सका, उस लड़के के साथ उसका अप्राकृतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया।

मुजफ्फरपुर के प्रख्यात व्यापारी रायबहादुर श्री ललितकिशोरी शरण प्रकट रूप से वैष्णव और प्रच्छन्न रूप से सखीसमाजी थे। बहुत सारे सुन्दर छोकड़ों में से छूँट करके तीन उन्होंने अपने यहाँ रख लिए थे। उन्हें राम लक्ष्मण और सीता के रूप में पूजते थे राय बहादुर की यह उत्कट सखी-भावना जब उत्तर बिहार के कतिपय बुद्धि-जीवियों में अन्दर ही अन्दर फैलने लगी, तो दूबेजी भी उस ओर आकृष्ट हुए। शायद इसीलिये रतिनाथ और नरेश का जोड़ा उनका

आँखों को एक प्रकार की परितृप्ति देता था। पढ़ने में तेज था, इसलिये रतिनाथ पर किसी को किसी प्रकार का संदेह क्या होता ?

नरेश की घड़ी, चश्मा और अच्छी पेन्सिल देख-देखकर रतिनाथ का मन मचल उठता। चुराने की इच्छा होती मगर छिपा कर रखने की कोई दूसरी जगह तो थी नहीं, इससे वह इच्छा ज्यों की त्यों रह जाती। घूम-फिरकर उसकी तमाम उच्छ्रंखलताएँ आखिर एक ही उच्छ्रंखलता में केन्द्रित हो गईं। वह, बतला ही चुके हैं, अघ्राकृतिक व्यवभिचार के फन्दे में पड़ गया। यह चस्का रत्ती का इतना बड़ा कि विद्यालय के हमउम्र या छोटे लड़कों पर उसकी भूखी आँखें अक्सर मड़ड़ाती रहतीं। उसे ख्याल आता कि पाठशालाओं और विद्यालयों में लड़कों के साथ लड़कियाँ भी पढ़ने आतीं तो कैसा अच्छा रहता !

आठ-दश दिन पर वह जयकिशोर के बासे पर जाया करता। मामा उसे खूब मानती थीं। उनकी राय नहीं थी कि रतिनाथ जमींदार के यहाँ जाकर रहे। मगर जयकिशोर ने अपनी पत्नी को जब समझाया कि यहाँ तुम्हारे बच्चों की चह-चह चुह-चुह में उसकी पढ़ाई ठीक से नहीं होगी तब रूपरानी मान गई। फिर भी जब-जब खास किस्म का कोई खाना बनता तो वह रत्ती को बुलवा लेतीं। मछली जिस दिन पकाई जाती उस दिन तो जरूर ही। रत्ती को मछली खाने का बड़ा शौक था। शुभंकरपुर में एक छोटे से पोखर का वह पट्टीदार था ही, बचपन से ही छोटी बड़ी मछलियों का स्वाद उसे मालूम था। वहाँ, विधवा होने के कारण चाची के लिए मछली-माँस अखाद्य था और इसीलिए जयनाथ और रतिनाथ ही थे कि पानी-फल (मछली) का भोग लगाते। हाँ, चाची यत्नपूर्वक मछलियाँ तलतीं अवश्य कि रतिनाथ और जयनाथ मन से खाएँगे। यहाँ दूबेजी जब से वैष्णव हुए थे तब से परिवार भर को निरामिषाहारी बनाने का सत्याग्रह कई बार कर चुके थे। दो-चार दिन के लिए जब वह बाहर जाते तभी उनके यहाँ मछलियाँ पकतीं और नरेश की माँ का जी भरता। जमींदार बाबू स्वयं

पचपन साल की अवस्था तक मछली-मांस का स्वाद ले चुके थे और अब जाकर रायबहादुर ललितकिशोरी शरण की छत्रछाया में कंठी बांध आये थे। कंठी क्या थी? तुलसी-काठ के खरादे हुए मसूर जैसे दाने थे, उन्हीं को गूँथ कर बनाया हुआ कंठहार था। परन्तु संस्कार क्या कम प्रबल होता है? बाबू साहब को जब कभी ललमुँहा रोहू का स्वाद याद आता तो बाजार चले जाते, मछली बेचने वालों के इर्द-गिर्द चार चक्कर लगा आते—सट्टी की मत्स्यगंधा आवोहवा उन्हें तृप्त कर देती। एक दिन किंसी साथी ने दूबेजी की चुटकी ली तो आप बोले—भाई, इतना भी नहीं करने दोगे? खाना तो मछली का छूट ही गया, कहो तो अब नाक भी काट लूँ।

उस दुर्गा पूजा की छुट्टियों में न जयकिशोर घर गये न रतिनाथ। रतिनाथ को तो मोतेदारी ऐसी मनलगू जगह मालूम हुई कि सपने में भी उस घर जाने की इच्छा न होता। साथी भी कई मिल गये थे। हाँ, चार्ची की याद आती तो छन भर के लिए उसका दिल झनझना उठता। बीच में दा-एक खत शुभंकरपुर से आये थे जरूर मगर उनमें कोई बात नहीं थी।

विजयादशमी के रोज बेतिया में बहुत भारी मेला लगता है। गाय बैल और घोड़े खूब विकते हैं। जमींदार बाबू प्रति वर्ष मेला में जाते थे। इस बार गाड़ी के लिए बैलों का जोड़ा उन्हें खरीदना था। साथ में नरेश, रतिनाथ, दो नौकर और रसोइया गया।

—२२—

उस साल (१३४७ फसली) का सावन शुभंकरपुर के लिए मौत का पैगाम लेकर आया। मलेरिया का ऐसा प्रकोप उस इलाके में इससे पहले शायद ही हुआ हो। लोग पटापट मरे। मवेशी तक न छूट पाये। भोला पंडित उन्नीस दिन तक बुखार में उबल कर स्वर्ग

सिधार गये। दम्पो फूफी भी इस बीमारी के चपेट में आ गईं। डाक्टर वैद्य कोई काम न आया। काम आई उमानाथ की माँ। बेचारी ने जी जान से सेवा का फिर भी दमयंती न बर्ची, तो इसमें किसका दोष ? फूफी की सारी जायदाद भतीजे के हाथ लगा।

जयनाथ भागकर बड़हड़वा चले गये। चाची को भी दो दिन का बुखार आया मगर वह शीघ्र ही ज्वरमुक्त हो गई। छोटे-बड़े सौ से कम नहीं मरे होंगे। सरकारी सहायता तब पहुँची जब सत्तर के करीब लोग मर चुके। कुनैन को टिकिया बँटी थी किन्तु गरीबों को वह मुश्किल से ही मिली थी। तुलसी का काढ़ा पी-पीकर आखिर कब तक लोग मलेरिया का मुकाबला करते ?

ताराचरण ने बड़ी काशिश की कि जिले और थाने के कांग्रेसी अधिकारियों से इस मामले में कुछ करवाएँ मगर अभी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की तुलना में नेताओं के लिए इन बातों का क्या महत्व था ? यह वे दिन थे जब कि हिटलर आधा से अधिक यूरोप को जीत चुका था और गांधीजी कोई नया कदम उठाना चाहते थे।

लोगों का कहना था कि भूकम्प (१९३४) के बाद देश की आबोहवा बदल गई है। नदियाँ, तालाब और पोखर उथले हो गये हैं। उपज कम होने लगी है। मलेरिया का प्रकोप बढ़ गया है। अकाल मृत्यु बढ़ गई है। इधर पैदा होने वाले बच्चे साँवले नजर आते हैं। आमों की फसल अब साल-साल नहीं होती।

शुभंकरपुर के इस टोले में चौदह औरतें थीं, उनमें से छः को मलेरिया ने लील लिया। दश मर्द थे, अब पाँच ही बच रहे। शन्नो की माँ, दमयन्ती, जनककिशोरी, जयदेव की बहन और पतोडू, नरेश की माँ—यही छः औरतें मरी थीं। एगारह ब्राह्मणों का जुटना मुश्किल हो गया था कि क्रिया-कर्म करने वाले का उद्धार होता। परसौनी के महापात्र भी मलेरिया का शिकार हो गए थे। हज़ाम इस गाँव में तीन ही थे, उनमें से दो मर चुके थे। क्रिया-कर्म की कौन

कहे, लाश उठाकर ले जाने वाले नहीं थे। पास में कोई बड़ी नदी थी नहीं, हाँ, लकड़ी की कमी नहीं। फिर भी सैकड़ों चिताएँ तैयार करने में गाँव भर की अमराइयाँ टूट हो गईं। छोटी जात वालों का अपनी लाशें बहाने में जीबलु नदी की बाढ़ ने काफी मदद न पहुँचाई हंगी तो मुश्किल था। कहाँ से बेचारे उतनी लकड़ियाँ लाते ?

भागकर जो बाहर जा सकते थे, जा चुके थे। मगर औरतें और बच्चे कहाँ जाते ? मुसीबत का यह पहाड़ उन्हीं पर अधिकतर गिरा। सौभाग्य से रतिनाथ और उमानाथ बाहर थे, चाची को अपनी परवाह नहीं थी। जयनाथ श्रावणी पूर्णिमा से चार दिन पहले ही भाग चुके थे। आँगन में और कोई नहीं था। दिन तो खैर जैसे-तैसे कट जाता मुदा रात का कटना पहाड़ हो जाता। एक तो यों ही ये लोग गाँव के छोर पर थे, तिसपर जयनाथ का आँगन बिल्कुल अलग था। वह छोर की पूँछ पर था। छिद्रों में हवा भर जाने के कारण जब सूखे-अधसूखे बाँस रात-बिरात बेतुकी तान अलापने लगते, तो चाची का हृदय काँपने लगता। बेचारी साफ देखती कि अँधेरी रात में भैसे पर सवार काले कलूटे यमराज आग-बरसाती अपनी लाल-लाल आँखों से उसे धूर रहे हैं। तब उसे अपने विजन का वह बालसाथी—रत्ती याद आता। घोर एकान्त के इन दारुण क्षणों को चाची उस लड़के से चिपटकर जाने कब से फटकारती आई थी और अब वही सहाग पचासों कोस दूर हट गया था ! उदास देखकर चाची के कंधे या पाठपर रातनाथ जब अपने हाथ रख देता तो असमर्थता या अनाथपन की उसकी भावना खटाई पड़े दूध की तरह फट जाती। वह महसूस करती कि एक ऊर्जस्वी पुरुष का क्षमताशाली हाथ पीठ पर है; लड़का है तो क्या हुआ, मर्द तो है।

चार-छः महीने बड़ी मुश्किल से कटे। कभी-कभी तो ढिबरी जलाकर रात-रात भर चाची चर्खा ही चलाती रहती। दिन में बहुधा तारा-चरण की माँ आ जाती या कोई और। चाची की पिछली भूल-चूक का

लेखा लेनेवाला अब कोई रह नहीं गया था। गरीबी और मलेरिया ने लोगों की कमर तोड़ दी थी। लड़ाई की तेजी के साथ अनाज का भाव भी चढ़ता जा रहा था। चाची के हाथ पर पैसे थे, बेसाह खरीद कर चावल मकई अरहर सब कुछ वह मँगाती थी। ताराचरण की खेती काफी थी। साल भर का सारा खर्चा उसका उसी से निकलता था। चाची ने कभी अपने लड़के को रुपये-पैसे के लिए नहीं लिखा। जब लिखा तब यही कि खाने-पीने में कजूसी नहीं करना। अपने शरीर का ख्याल रखना। सौ रुपये पिछले छः महीनों में चाची ने बचा लिये थे। कोंकटी की रुई खरीदकर उसने दो सेर सूत इसलिए काते कि दोनों लड़कों की चादरे और कुत्ते का कपड़ा बुनवा लेगी।

जयनाथ का महाजन बनने का उत्साह शान्त हो चुका था। दो सौ रुपये डूब गये थे। बाकी भंग, माजूम, घी, दूध, मछली, मांस और प्रेयसी के पीछे लग रहा था। आज कल आप वड़हड़वा चले गये थे। वहाँ भांजे अपने एक पट्टीदार से मुकदमा लड़ रहे थे। मामूली पैरवी के लिए भी भागलपुर दौड़ना उन अमीरजादों को अखरता था। ऐन वक्त पर उन्होंने अपने लायक मामा को याद किया। आतुर गजराज की पुकार पर शेष शय्या छोड़कर और लक्ष्मी को समझा-बुझाकर नारायण भी उतनी फुर्ती से नहीं दौड़े होंगे जितनी फुर्ती से जयनाथ वड़हड़वा पहुँचे। प्रेयसी को पाँच रुपये का एक नोट थमा और उमानाथ की माँ का सौंप दिया घर-आँगन, चल पड़े। दुतरफा भोला कंधे से लटक रहा था। भगवान् (शालिग्राम) इस बार साथ जा रहे थे। जाते-जाते उन्होंने चाची से कहा—कृष्णाष्टमी तक अवश्य लौट आऊँगा, बाबा (वैद्यनाथ) पर जल डारना है। और तो कोई काम है नहीं। तुम किसी बात का अन्देश मत करना...

चाची ने कहा था—बाबू, जल्दी की क्या बात है? समूचा गाँव भड़ी पर चढ़ा हुआ है। देखते हो, लोग मलेरिया के मारे तबाह हैं।

क्या करने आओगे अभी ? कृष्णाष्टमी क्या और जगहों में नहीं होती ? हम न ठहरीं लाचार, तुम्हारा क्या है ? जहाँ धड़ तहाँ घर !

इस बात का जयनाथ ने प्रतिवाद किया था—नहीं नहीं, उमानाथ की माँ, कहीं क्यों न हों, जी तो हमारा यहीं टँगा रहता है ! घर है बार है, वाप दादों की जायदाद है । टोल-पड़ोस, जान-पहचान, चीन्हा-परिचय क्या-क्या नहीं है ? सब कुछ तो अपना यहीं है.....उमानाथ की माँ, ऐसा मत समझना कि जयनाथ को इस मिट्टी का मोह नहीं है.....

अन्त में उसका गला भर आया था और झुककर आँगन की भूमि में से एक चुटकी मिट्टी उसने उठा ली थी । उसमें से ज़रा सा तो जयनाथ ने कपार में लगा लिया था और बाकी बाँध लिया था चादर के खूँट में । उस दिन देवर का वह अपूर्व भावावेश देखकर उमानाथ की माँ का सारा शरीर मिहर उठा था ! जयनाथ का वह रूप आज तक उसने नहीं देखा था । उत्तरदायित्व की भावनाओं से शून्य, मेहनत-चोर, आवारा, कृतघ्न, कठोर, झूठा—जयनाथ यह नहीं तो और क्या था ? ऐसे मनुष्याभास के हृदय में भी कहीं अपनी पितृभूमि की मिट्टी के प्रति इतनी ममता हो सकती है ! हाँ, हो सकती है । अपने देवर का भरा हुआ गला और डबडबाई आँखें चाची के सामने थी । यह सब कुछ किसी निपुण अभिनेता का असंभावित कौशल नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष वास्तविकता थी ।

सचमुच इस बार जयनाथ बड़हड़वा में रम गये । उनका नित्य-कृत्य था सुबह उठ कर शौच आदि से निबटना फिर भाँग छानना । दश बजे स्नान-पूजा । ग्यारह बजे भोजन । उसके बाद घंटा भर मनोयोग-पूर्वक देशी सरौते से कतर-कतरकर सुपारी फाँकते जाना और साथ ही बातें भी लड़ाना । बारह से चार बजे तक सोना । छः तक फिर भंग-भवानी की आराधना । आठ तक भाँजों के इस्टेट का काम । नौ बजे भोजन । उसके उपरान्त दिवंगत बहनोई की छोटी भ्रातृ-वधू से नर्म-आलाप । वह बालविधवा बड़ी हँसोड़ तबियत की थी

और जयनाथ के लिए जान देती थी। कहने के लिए एक दूसरे के लिए भाई बहन थे, परन्तु उनका आपस के सम्पर्क का क्षण दो सन्तत प्राणियों के चिरवाञ्छित मिलन का मधुपर्व ही था। सुमित्रा बहन का वैधव्य नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का उज्ज्वल प्रतीक था। उनकी कोख से यही एक मात्र कमलकान्त उत्पन्न हुए थे। बाईस साल हुए, पति के देहान्त के बाद कभी सुमित्रा ने रंग-विरंगी या पाढ़वाली साड़ी नहीं पहनी। न पान खाया न दाँतों में मिस्सी लगाई। गहने पतोहुआं को दे दिये। मेले के दिनों में गंगा या और तीर्थों में नहीं गई। मार्कान की पतली धोती, गले में बारीक रुद्राक्षों की माला, कपार पर गंगौट (गंगा की मिट्टी) का ठोप—यही उनका भेष था। अकेले में किसी ने मर्द से बातें करते उन्हें कभी नहीं देखा। बहुत कम बोलती थीं, सो भी जमीन जायदाद या घरेलू मामलों की गुत्थियाँ सुलझाने के लिए ही। अब तो खैर लड़के बालिग हो गये थे। उन्होंने गृहस्थी का भार भलीभाँति सँभाल लिया था। फिर भी एक सतर्क निरीक्षक की भाँति सुमित्रा की दृष्टि सदैव अपने पुत्रों पर रहती। एक कमलाकान्त था और कई सौतेले थे। व्रत, उपवास और नियमित आहार से सुमित्रा ने स्वास्थ्य को अपने काबू में कर लिया था। मधुर वाणी और सरल व्यवहार से वह स्वजन परिजन नौकर-चाकर और खवास-खवासिन सभी की श्रद्धा का पात्र बन गई थी। इस प्रकार तिरहुत और शुभंकरपुर का नाम उसके कारण उज्ज्वल हुआ था। बहन ने बड़ी कोशिश की कि भाई आदमी बने, पर वह नहीं सुधरा। जयनाथ को काफी जमीन देकर बड़हड़ा में ही अलग बसाने की सुमित्रा की इच्छा थी, किन्तु वह पूर्ण न हुई। इसमें जयनाथ का ही दोष था। वह शर्दा करने के लिए तैयार नहीं हुआ। दो साल तक पड़ोस की एक लड़की को सुमित्रा अपने भाई के लिए छेके रही, मगर 'यहाँ न लागहिं राउर माया !'

इस बार भी सुमित्रा की देवरानी ने ही छल-बल से जयनाथ को बुलवाया था। ऐसा या तो अविवाहित हो या फिर विधुर। वैसी स्थिति

में प्रेमिका को सहूलियत रहती है। देवरानी का नाम था चन्द्रमुखी। धनी माँ-बाप की लाइली बेटी 'फुदनी' ससुराल में चन्द्रमुखी क्यों कहलाई? इसका रहस्य उसके सौन्दर्य की अब तक अकम्पित दीप-शिखा में निहित है। विधवा हुई तो क्या हो गया? मछली माँस छोड़कर और सभी वस्तुएँ वह खाती है। बचपन से ही छुटाँक भर आधा पाव मलाई रोज खाती आई है। काँच और लाह की न सही सोने-चाँदी की चूड़ियाँ पहनने से कौन उसे मना करेगा? खान-पान ओढ़न-पहिरन सभी में चन्द्रमुखी बदलती ऋतुओं के मुताबिक रुचि वैचित्र्य का ध्यान रखती थी।

चन्द्रमुखी से भर पेट गप-शप कर चुकने पर जयनाथ दालान के उस खंड में सोने आते जो हबेली से सम्बद्ध था। सोने से पहले वह दो-चार श्लोक गुनगुनाते और अँधेरे में विस्तरे पर बैठे-बैठे ही बटुए से निकालकर दश-दश रुपये वाले पन्द्रहों नोट गिन लेते। यही डेढ़ सौ बच रहा था। यह आमदनी की जगह थी, इसीलिए खर्चा नहीं पड़ रहा था। छूते-टटोलते अब पन्द्रहों नोट जयनाथ की अँगुलियों से ऐसे परिचित हो गए थे कि कोई जरा भी हेर-फेर या कमोवेश उनमें करता तो वह जरूर ही जान जाते।

तीन-चार रुपये प्रति मास वह रतिनाथ को मनी-आर्डर भेजते थे। इसके लिए किसी ने उनसे कहा नहीं था। स्वतः ही यह बात उनके दिमाग में बैठ गई थी कि लड़का परदेश में है। कभी कोई खास चीज़ खाने-पीने का मन करेगा तो किससे कहेगा? यों भी हाथ में चार पैसे रहेंगे तो दिल मज़बूत रहेगा।

रत्ती महीने में एक ख़त बाप के नाम डालता था। एक ख़त चाची को भी भेजता था। कभी-कभी उसका हृदय अपने गाँव के लिए रोता था। बागो याद आती। सत्तो याद आता! वह कई बातों में रत्ती का गुरु था। तैरना और पेड़ पर चढ़ना उसने सत्तो से ही सीखा था। नक़ली रोने की तालीम भी रत्ती को उसी उस्ताद से मिली थी।

माँ के मरने के बाद लगातार आठ साल तक रतिनाथ के लिंग (जननेन्द्रिय) का अगला हिस्सा ढका रहा। नंगा नहाते या दिशा-फराकत के वक्त साथी उसे ताना मारते—रत्ती, तेरी न तो शादी होगी न तेरे किए लड़का-बच्चा पैदा होगा। तू तो हजड़ा से भी बदतर है! रतिनाथ को साथियों का यह ताना चुभता और अकेले में वह फफक-फफककर रोता। यह बात बाप से डर के मारे कहता ही कैसे? चाची से कहने में संकोच होता। एक दिन जब बेचारा इसी उधेड़बुन में पड़ा था तो सत्तो ने आकर पांछे से पीठ थपथपाई थी और कहा था—रत्ती, तेरा इलाज मैं करूँगा। चिन्ता मत कर! और, सचमुच सत्तो के ही बताये तरीके से रतिनाथ की वह त्रुटि दूर हुई थी। नियमित रूप से कई दिनों तक तेल मलने पर लिंग की टोपी ढीली हो गई तब रत्ती ने तारा बाबा की दुर्गा को पाँच पैसे का बतासा चढ़ाया था। उम्र में दा महीने का छोटा होने पर भी सत्तो इन्हीं कारणों से रत्ती का गुरु था। अपने इस प्रिय साथी की याद रतिनाथ को बहुत सताती। दूसरा नम्बर था बागो का, मगर अब उसका ब्याह हो चुका था, इससे उसके प्रति थोड़ा विलगाव और बेगानापन अनुभव करना अस्वाभाविक नहीं था।

जाड़े के दिन आए। रत्ती ने अपने मन को पढ़ने में लगाया। रात में बड़ी देर तक वह जगता रहता। यह जागरण उपन्यासों की सैर के लिए नहीं, पाठ्य-पुस्तकों के लिए था। होली तक उसने मध्यमा का कोर्स पूरा कर लिया। उसके बाद वह हिन्दी के पीछे लगा। गर्मियों के दिन आते-आते कुछ अंग्रेज़ी भी उसने सीख ली थी। इसके अलावा संस्कृत से हिन्दी और हिन्दी से संस्कृत करने में जो विशेष योग्यता वह हासिल कर सका इसका सारा श्रेय जयकिशोर बाबू का ही देना चाहिए।

बेतया रतिनाथ को मोतिहारी से अच्छा लगता था। इस बीच में कई बार वहाँ से वह हो आया था। वहाँ की प्राकृतिक शोभा और

वातावरण उसे दरभंगा जैसा ही लगता था, मगर जिला स्कूल तो मोतिहारी में ही था। रतिनाथ की इच्छा से तो नरेश बेतिया नहीं आ-जा सकता था। दुबेजी का सुनहला पिंजड़ा उसे अब अच्छा नहीं लगता। नरेश की रुचि पढ़ने-लिखने की ओर थी नहीं। बाध्य होकर रत्ती को उसके साथ ताश, कौआटुट्टी, मोगलौ-पैठान और बाघगांटी खेलना पड़ता। यह ठीक है कि अपरिग्रह का बन्धन अब बिल्कुल शिथिल हो गया था और सुवासित तेल-साबुन का व्यवहार, ताम्बूल-सेवन, नृत्यगीतवाद्यनाट्य आदि का दर्शन-श्रवण, चर्व्य-चोष्य-लेह्य का आस्वादन नरेश ने आरम्भ कर दिया था, परन्तु रतिनाथ का हृदय इन बातों को अपनी पढ़ाई का अंतर्गम समझता था। अपने पूर्वज नीलमाधव उपाध्याय का नाम उसे इस प्रवाह में अपने को भी समा देने से रोक रहा था। उसने सोचा—क्या है, इनके लिए यही विद्या है, यही पढ़ाई है। नरेश और उनके बाप (दुबेजी) की ज़रा-सी छींक पर चुटकी बजाकर 'चिर'जीव' कहनेवाले, इनकी कलाई पर रक्षासूत्र बाँधनेवाले पचासों नहीं सैकड़ों निकल आएँगे। मगर, हमें कौन पूछेगा ? इस उमर में चार अच्छर पढ़ नहीं लिया, तो ज़िन्दगी भर इन्हीं की जूतियाँ हमारी इष्ट-देवता बनी रहेंगी।

—२३—

सौराठ की सभा उस साल वैशाख के ही अन्त में हुई थी। उमानाथ की शादी पंडौल स्टेशन से पाँच कोस पश्चिम महनौली के एक खेतिहर बाभन की सयानी लड़की के साथ हो गई। सिर्फ दो घण्टे लगे, बात पक्की हो गई। उमानाथ का यह व्याह इतना चटपट तय हो जाएगा, किसे पता था ? सौराठ में यही तो होता है। हजारों विवाहार्थी इकट्ठे होते हैं। कन्याओं की तरफ से उनके आभेभावक बड़ी तादाद में जमा रहते हैं। सभा में यदि कन्याएँ भी शामिल होतीं

तो स्वयंवर का यह विराट् पर्व न केवल भारत भर में परन्तु सम्पूर्ण विश्व में अद्वितीय कहलाता। तब सोनपुर के प्लॉटफॉर्म और हरिहर क्षेत्र के मेले की तरह सौराठ की यह विवाह-सभा भी मशहूर हो गई रहती। यद्यपि अपनी मौजूदा स्थिति में भी ब्राह्मणों का यह वैवाहिक मेला अनुपम है।

चौदहवीं सदी में कर्णाटवंशीय राजा हरिसिंहदेव मिथिला के शासक थे। उनके राजत्वकाल में, एक जनश्रुति के अनुसार, किसी अभिजात ब्राह्मणी पर व्यभिचार का आरोप लगाया गया। राजसभा में वह खड़ी की गई। हाथ में पीपल का पत्ता और उस पर आग रख कर धर्माध्यक्ष ने उससे कहलवाया—चाण्डाल से कभी मेरा सम्पर्क नहीं हुआ, अगर हुआ तो इस आग से मेरा हाथ जल जाए। तीन बार ब्राह्मणी ने कहा। हाथ जलने लगा। तब पंडितों का दिमाग चकराया। उन्होंने सोचा—इसके विवाह-सम्बन्ध की छान-बीन करनी चाहिए। कदाचित् इसका पति ही दूषित विवाह-सम्बन्ध के कारण चाण्डाल की कोटि में आ गया हो..... ब्राह्मणी और ब्राह्मण - दोनों के मातृ-कुल तथा पितृकुल का लेखा-जोखा तैयार हुआ। बापकी तरफ से सात पुरखा और माँ की तरफ से पाँच पुरखा तक यदि कुछ लगाव रहा तब तो शादी नहीं होना चाहिये। कन्या और वर दोनों के पुरखों की छान-बीन की जाती है तब जाकर व्याह होता है। उन दोनों का शादी के समय इस गणना में कुछ गड़बड़ हो गया था। पक्का सबूत मिल जाने पर धर्माध्यक्ष ने फिर उस ब्राह्मणी के हाथ पर आग रखवाई और कहलवाया—पति को छोड़कर यदि किसी दूसरे से मेरा लैंगिक सम्पर्क हुआ हो, तो यह हाथ जल जाए। इस तरह कहने से ब्राह्मणी का हाथ नहीं जला।

इस घटना के उपरान्त राजा हरिसिंह देव को इस बात की बड़ी चिन्ता हुई कि मिथिला के ब्राह्मणों का आभिजात्य कैसे सुरक्षित रहेगा। साथियों से परामर्श करके तत्कालीन ब्राह्मणों का उन्होंने पत्रा

(व्यौरेवार सूची) तैयार करवाई । विद्या, आचरण, कुलीनता, आदि का विचार करके बनवाई हुई ब्राह्मणों की अनुक्रमणिका समयानुसार बढ़ती ही गई । प्रत्येक नवजात ब्राह्मण-कुमार का नाम पंजीकार लोग आज भी अपनी अनुक्रमणिका में लिख लेते हैं ।

इससे हुआ यह कि शादी-ब्याह में ब्राह्मणों को सहूलियत होने लगी । ब्राह्मणों की ऐसी असलसिलेवार फेहरिस्त भारत भर में और कहीं नहीं है । पंजीकार लोग इन लड़कों तक निलोंभ और तटस्थ रहकर यह काम करते आए हैं सो बात नहीं । कुलीनता बनाम आभिजात्य के विनिमय, क्रय, विक्रय आदिका प्रामाणिक इतिहास अभी काल के गर्भ में छिपा रहे, यही अच्छा । वह भाँ इन्हीं लोगों का शासन था कि रतिनाथ के नाना की दस विमाताएँ थीं । जयनाथ के परदादा ने इक्कीस शादियाँ की थीं । तिब्बत में जैसे बहुपति-प्रथा अभी तक जायज और जीवित है उसी तरह रतिनाथ की मिथिला में बहुपत्नी-प्रथा जायज और जीवित है ।

सौराठ इन लोगों का बड़ा बाजार है ।

मगर, अब ज़माना बहुत बदल गया है । कुलीनता ही काफी नहीं थी, उमानाथ दरिद्र था । उसका बाप और दादा भी दरिद्र थे । उसकी शादी की बात इतनी चटपट जो तय हुई इसका श्रेय ट्राम कम्पनी की नौकरी को था । उमानाथ आज-कल चालीस पा रहा था । अंग-अंग से जवानी भाँक रही थी । लगता था कि हरौती बाँस का कोंपल सर से बढ़ आया है और अब उसमें से कड़चियाँ फूटने ही वाली हैं । पतला-छुरहरा । क्या ही खूबसूरत किल्होर था ! फिर भी दो सौ रुपये देने पड़े । जयदेव और जयकिशोर ने अभिभावक का काम किया । पंजीकार वीरभद्र मिश्र ने ताल-पत्र पर सिद्धान्त लिख दिया । उन्हें दो रुपये उसका लिखाई मिली । यह रकम कन्यावाले ने दी थी क्योंकि उसका वंश कुछ निम्न कोटि का था ।

जयदेव और जयकिशोर बारात में गए। तीसरा स्वयं उमानाथ था। अगले दिन से अतिचार पड़ता था। शुभ लग्न का अंतिम क्षण दुपहर रात तक ही था। जैसे-तैसे सब महनौली पहुँचे। सौराठ से छ कोस पच्छिम।

वर देखकर महनौली वाले खूब खुश हुए। कन्या के बाप का नाम था नन्द भा। लोगों ने कहा—नन्दे को यह काम अच्छा सुतरा! पैसे भी मिले, पात्र भी मिला। लड़की जायगी तो उसे बरगद की छाँह मिलेगी। कमासुद पति मिलेगा, मुसम्मात सास मिलेगी और क्या चाहिये?

आँगन में औरतों ने कमीज-कोट और बनियाइन खुलवाकर उमानाथ को गहरी निगाह से देखा। एक मुँहफट खबासिन बोली—आँख मूँद लो मैया, धोती भी खुलेगी।

आ, तू ही खोल दे—अधेड़ उम्र की एक औरत ने अपनी छोटी आँखें नचाकर उससे कहा। वह अप्रतिभ हो गई। उमानाथ को ट्राम कम्पनी का वह बंगाली डाक्टर याद आया जिसके सामने इसी भाँति कपड़े खोलकर खड़ा होना पड़ा था। उस दिन भी पसीना निकल आया था और आज भी। फ़र्क यही था कि उस दँतदुष्टे डाक्टर ने फोते टटोलकर देखा था मगर इन औरतों ने वैसा कुछ नहीं किया। एक बुढ़िया ने आगे बढ़कर पूछा—कुछ पढ़ा-लिखा भी है?

— ज ज ज ज्योतिष...थोड़ा...उमानाथ के मुँह से पूरा वाक्य नहीं निकला। उसका दिल बेहद धड़क रहा था। तब तक पुरोहित ने उधर से आवाज दी—सिन्दूर दान का मुहूर्त्त निकट आ गया। आप लोग जल्दी करें।

धोती बदलकर उमानाथ पुरोहित के पास, वेदी के निकट पहुँचा।

कई प्रकार के विधि-व्यवहार होते हवाते कन्यादान जब सम्पन्न हुआ तो रात ढल चुकी थी।

अगले दिन जयदेव और जयकिशोर ने वधू का मुँह देखा । चार-चार रुपये मुँहदिखाई दी । लड़की का स्वस्थ सुन्दर चेहरा देखकर दोनों खूब प्रसन्न हुए और भगवान् से प्रार्थना की, बहू जैसी रूपवती है वैसी ही सुशीला निकले ।

उसी दिन दुपहर को वे दोनों चल पड़े । नन्द भा ने दोनों को दो-दो धोतियाँ और चार-चार रुपये विदाई में दिये । रुपये लौटाकर धोतियाँ इन लोगों ने रख लीं !

शाम तक दोनों शुभंकरपुर पहुँचे । उन्हें लाल धोती पहने देखकर लोग समझ गए कि उमानाथ का विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो गया ।

चाची को यह शुभ समाचार कल रात ही मिल चुका था । सौराट से जो लोग लौटे थे, उन्होंने ही आकर कहा था ।

कुल जमा तीन सौ लेकर उमानाथ कलकत्त से घर आया था । माँ को शक था कि इस बार काम होगा । इसीसे पहले इस शुभ समाचार को चाची ने मजाक ही समझा । मगर गुलाबी रङ्ग में रँगी धोती पहने जयदेव और जयकिशोर आकर जब सामने खड़े हो गए तो खुशी से उसकी आँखें डबडबा आईं । जयकिशोर को प्रणाम करते समय उसके हाथ काँपने लगे ।

जयदेव ने मुस्कराते हुए कहा—लो, उमानाथ की माँ, तुम्हारा काम हमने कर दिया । कब मिठाई खिला रही हो ?

वह भावावेश में थी, चुप रही । जयकिशोर बहन की तरफ से बोले—खाइए न अब से आसिन तक कितना खाइएगा ?

और ठीक ही कहा था जयकिशोर ने । गरीब से गरीब सास-ससुर भी नये दामाद को हरेक त्यौहार पर दही पकवान चूड़ा केला मिठाई—दो-चार चंगेरा भरिया के द्वारा ज़रूर भिजवाता है । संतान की ससुराल से आई सौगात की यह सामग्रियाँ लोग अड़ोस-पड़ोस में बायना के तौर पर बँटवा देते हैं । सबकी मिठाई सब खाता है । सबका पकवान सब खाता है । शादी के बाद साल भर तक यही

सिलसिला रहता है। सास-ससुर अगर धनी और उदार हुए फिर तो कहना ही क्या ?

जयदेव चले गए, अपने घर की ओर। जयकिशोर बहन के साथ आँगन आए। वहाँ और कोई तो था नहीं। शाम की ठंडक में बीच आँगन में ही चाची के कम्बल बिछा दिया। पानी लाकर भाई के पैर धोने ही जा रही थी कि रतिनाथ भी आ गया। वह बलुआहा पोखर पर कबड्डी खेलने गया था। लाल-गुलाबी धोती पहने दो आदमियों को अपने घर के सामने दूर से ही देखा तो खेल से उसका मन उचट गया और भाग आया। आते ही लपककर उसने मामा के पैर छुए। फिर एक ओर होकर बैठा।

भाई के पैर धोते-धोते चाची बोलीं—हमको तो भरोसा नहीं था। समय-साल खराब है। चीज-बस्तु दिन से दिन ऊपर चढ़ती जा रही है ...।

भगवान की कृपा—जयकिशोर ने कहा—सारी बात-चीत मिनटों में तय हो गई। रत्ती तो गया ही नहीं था। नहीं तो यह भी इस समय कहीं समुराल में ही होता।

शर्म से रतिनाथ की कनपटी सुख हो गई, मामा ने अपनी आँखें उसके चेहरे पर गड़ा दीं और बोले—इसी डर से यह सौराठ गया तक नहीं। है न रे !

संकोच के मारे रतिनाथ की गर्दन टूट रहा थी। चाची ने इस अवग्रह से उसे छुटकारा दिलाया। उसने कहा—जाओ बेटा, बूढ़े राउत को समझा कर कहना कि मामा बहुत थके हैं। रात में आकर मालिश कर जायें।

रत्ती झटककर आँगन से निकल गया।

चाची पंखा ले आई थी। झूल रही थी। जयकिशोर ने कहा—दो सौ देने पड़े मगर काम अच्छा हुआ। लड़की सयानी है। खूब-सूरत तो है ही।

भाई के एक-एक शब्द को चाची मानो पी रही थी। उसका रोम-रोम कंटकित हो रहा था। जाने कितनी मुसीबतें भेलकर उमानाथ को उसने पाला-पोसा था। कितना कष्ट, कितनी तपस्या इस लड़के के लिए उसने की थी। आज उमानाथ ने शादी की, कल बहू आयेगी। परसों चाची ज़रूर ही पोते का मुँह देखेगी.....वह सुख-स्वप्न में डूबने-उतराने लगी। हाथ में पंखा था, कब उसका डुलना रुक गया और बाँह निश्चेष होकर घुटने से आ लगी और कब फिर कम्पित चेतना की सन्धि के किसी क्षण में बाँह अपने आप हिलने लगी और पंखा फिर चलने लगा, चाची को पता नहीं। ध्यान उसका तब भंग हुआ जब एक बार पंखा कमबल के छोर से ज़रा छू गया।

जयकिशोर एक नहीं, दसों दफे शुभंकरपुर आ चुके थे। सब देखा-सुना था। ब्याह के वारे में साधारण बातें कह चुकन पर दिशा-फराकत के लिए लोटा लेकर बलुआहा की ओर निकल गये। चाची रसोई में लगीं। जयदेव ने लोटा भर दूध भेज दिया था। उनकी दो मैसों दुधारू थीं। दूध-दही के लिए शुभंकरपुर मरुस्थल था। मेहमान आ जाने पर अच्छे अच्छे गृहस्थ तक गोरस के अभाव में निर्लज्जता का अनुभव करते थे।

जयनाथ अभी तक बड़हड़वा में ही थे। शुभंकरपुर में उनके लिए कोई आकर्षण तो था नहीं। जायदाद बेचबूचकर स्वाहा कर गये थे। रतिनाथ अब अच्छी तरह समझ गया था कि महादरिद्र तो हूँ ही, पढ़ूँगा नहीं तो बुरी गत होगा। इसलिए प्रतिदिन चार-छै घंटे वह अपनी पाठ्य-पुस्तकों से चिपटा रहता। हाँ, गाँव में कभी-कभी मन ऊब उठता तो मोतिहारी का वह छोटा-सा पुस्तकालय ध्यान में आ जाता। यहाँ ताराचरण के पास 'आज' बराबर आता था, उससे थोड़ा कुछ मनोरंजन हो जाता। परन्तु उपन्यास पढ़ने की चाट पड़ चुकी थी, इसका क्या उपाय हो?

पोखर में उस दिन मछलियाँ पकड़ी गई थीं। मल्लाह आये थे। केले के थंभों पर तख़्तपोश डालकर उसे मज़बूती से बाँध दिया गया था। वही फिर अच्छी-खासी नाव हो गई। तख़्तपोश दम्नो फूफी की थी। आठ हाथ लम्बी और छ हाथ चौड़ी। पोखर के बीच में उसे हेला दिया। चारो मछुए जाल लिए हुए उस पर सवार थे ही। समूचे तालाब में घूम-घामकर वे जाल फेंकने लगे। भाकुर, ब्वारी, रोहू, भुनचट्टी, सौरा, नेन—किस्म-किस्म की मछलियाँ पकड़ी गईं थीं। रत्ती को तीन फ़रीक का हिस्सा दस सेर का एक रोहू मिला था। अट्टारह में से तीन भाग। एक हिस्सा कमलनाथ का, जो रामगंज में बस गये थे। एक भाग चाची का। तीसरा भाग अपना। रिवाज़ यह था कि मछुए तीन में से एक भाग, तेहाई, का हक़दार हों। इसके मुताबिक उस दिन उन्होंने कुल नब्बे सेर (दो मन, दस सेर) मछलियाँ मारी थीं। तीस सेर उनकी मजूरी हुई थी। साठ सेर पोखर के मालिकों का हुआ था। दमयंती, भोला पंडित आदि तीन और थे जो चार-चार छै-छै पट्टियों के हक़दार थे। पोठी, भिंगा या ईच्चा जैसी छोटी-छोटी मछलियाँ कभी मारी जाती—दो सेर होने पर भी अट्टारह जगह उनका बाँट-बख़रा होता।

अकेले इतनी बड़ी मछली लेकर चाची क्या करती? पाँच सेर रखकर बाकी उसने जयदेव के घर भेज दिया था। चीरने पर रोहू के पेट से करीब आधा सेर अंडा निकला था, देखने में ठीक पोश्ता दाना की तरह।

जयकिशोर निबट आये ता मुना हुआ चूड़ा और रोहू के तले टुकड़े तश्तरी में सामने आये। अंडे के बड़े थे। उन्हें यह सुयोग बहुत दिनों पर प्राप्त हुआ था। चार साल पहले जयकिशोर के ससुर मरे थे। वहाँ तेरही के दिन रोहू मछली का पर्याप्त प्रबन्ध किया गया था। जमींदार थे वह। चार पोखरों के मालिक। भला वहाँ मछलियों का क्या कहना? और इतने दिन बाद आज फिर वही वस्तु आगे

आई थी। मोतिहारी में या तरकुलवा में खरीदकर खाना पड़ता था। खरीदकर खाने में यह आनन्द कहाँ ?

जल-योग कर चुकने पर मालिश का अवसर आया। असल में यह अवसर रात का खाना खा लेने के बाद आया करता है। आप खाकर लेट जाइए। थकावट ज्यादा है। खबास आयेगा। हाथ में ज़रा-सी चिकनई (तेल) मखाकर वह आपके पैरों से शुरू करेगा, एक-एक नस को मानो दुहता चला जायेगा। पैर, गौड़, टाँग, घुटने, जाँघ, कमर, पीठ, पसलियाँ, गर्दन, कंधे, भिर, माथा, कपार, कनपटी, बाँह, केहुनी, कलाई, हाथ, पंजे—अंग-अंग की नसों को दुह लेगा। पंजे से पंजा लड़ाकर अंगुलियों के एक-एक पोर को चटकाकर अपने हाथ एक बार फिर आपके पैरों पर ले जायेगा। घुट्टियाँ चाँपकर अंगुलियाँ (पैरों की) चटकाकर कुछ देर तक तलवे रगड़ता रहेगा और अन्त में टाँग, जाँघ और कमर में हल्की मुकियाँ लगाता रहेगा। तब तक आपकी पलकें झिप चुकी होंगी, आप अवश्य हो रेशम की रस्सियों वाले नींद के झूले पर बेभान हो गए रहेंगे। इसमें कमसे कम घंटा भर तो लग जाएगा।

परन्तु जयकिशोर बचपन से ही परदेश रहे। खबासों की इस कला के प्रति उनकी जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। कल और आज पैदल इतना अधिक चलना पड़ा था कि चूर-चूर हो रहे थे, एक मात्र यही कारण था कि अपना बदन राउत से चंपवाने के लिए वह राजी हो गए। फिर भी इस बूढ़े खबास ने अपने तर्जों कोई कसर न रखी। जयकिशोर की आँखें लग ही गईं।

तारा चरण की माँ, जयदेव की चचेरी बहन, शकुन्तला, रामपुर वाली और नरेश की भाभी ने आकर तीन मंगल-गीत गाए। चाची का भी मन था, साथ मिलकर गाए। दूसरा लड़का तो है नहीं कि कभी और गाकर मनोरथ पूरा कर लेगी। किन्तु बेचारी रसोई में मशगूल थी। फिर भी दूसरे गीत में थोड़ा योग दिया था। जयकिशोर

को औरतों की इस मांगलिक गोष्ठी का पता तक न चला, वह सो रहे थे। जाते-जाते रामपुर वाली ने कहा—अहा, आज कहीं जयनाथ भी यहाँ होते !

नाक पर उँगली चढ़ाकर और आगे बढ़कर ताराचरण की माँ बोली—उनका क्या, महनौली में समधी का दालान हो चाहे बड़हड़वावाले बहनोई का दालान हो कहीं भी बैठा दो, मुदा भंग और कुन्डी-सोटा उनका सही सलामत रहे...हाँ, यह कहो बहिना, कि कहीं आज बाबू वैद्यनाथ खुद होते तो.....

चाची ने लम्बी साँस ली और पड़ोसियों को दरवाजे तक जाकर छोड़ आई।

थोड़े काल बाद रत्ती ने धीरे से उठाया तो मामा उठे। खाना पकाने में चाची ने कुछ लफंफा नहीं किया। मछली, भात अंडे का बड़ा। भोल भी थी और तले टुकड़े अलग से भी थे। जयकिशोर मछली के आगे और किसी भोज्य पदार्थ को महत्त्व नहीं देते थे। हाँ, साथ में जम्बीरी नींबू रहना ही चाहिये ? 'जम्बीरनीपरिपूरित-मत्स्यखंड' की तुलना में मैथिल लोग अमृत तक को तुच्छ समझते हैं राघव (रोहू) का मूँड़ भी जयकिशोर के ही भाग्य में बदा था। पीठ, पेट, पुछरी, शिर—रोहू के अंग-अंग में पृथक्-पृथक् स्वाद होता है, इससे जयकिशोर अनभिज्ञ नहीं थे। चालीस मिनट लगे होंगे खाने में। भात तो दो ही चार कौर खाए होंगे, रोहू के आगे भात-दाल को कौन पूछता है ? मछली पर से दही खाना अच्छा रहता है, मगर वहाँ तो दूध था। चाची को इस अभाव का खेद अवश्य हुआ।

गर्मी की रात थी। तीनों जने आँगन में ही सोये। चाची को देर तक नींद नहीं आई। कल नहीं, परसों उसे कम से कम चार भार तो भेजने ही होंगे नहीं तो महनौली में लोग क्या कहेंगे ? दूध कहाँ से आयेगा ? केले तैयार कहाँ मिलेंगे ? कपड़े और मिठाई तो खैर बाजार से आ जाएँगे। भरिया कौन-कौन जाएगा ? राउत एक, बुचिया दो,

किसुनी मँडड़ तीन और चौथा ? बहू के लिए एक-आध गहना जाना ही चाहिए...अच्छा तो है, बाजार से नाक का लौंग मँगवा लूँगी। पन्द्रह लगेगा कि बीस ?.....

इन्हीं परिकल्पनाओं में जाने कब चाची की आँखें भिप गईं ।

—२४—

गेंहुआ रङ्ग । लम्बा कद । फैला हुआ चेहरा । प्रशस्त ललाट । पतले होठ । बड़ी-बड़ी आँखें । नाक ज़रा चिपटी । पन्द्रह-सोलह साल का तरुण । साफ़ धोता और नीली धारी वाली पीली कमीज पहने जब उसने उस विशाल आँगन में बेधड़क प्रवेश किया तो सूर्यास्त का समय था ।

किसीने उसे नहीं पहचाना । वह भी किसीको पहचान नहीं पा रहा था कि इतने में कुंजी खवास की औरत जनकमनि सिर और कमर पर पानी-भरे दो घड़े लिए पहुँची । आगंतुक का मुँह देखते ही वह उत्साह से चिल्ला उठी—दइया री दइया ! यह तो रत्ती वबुआ है । कितना बड़ा हो गया है !

तब तक दो मामियाँ सामने घर से दौड़ आईं । नानी बीच आँगन में खजूर की सितलपाटी पर बैठी थी, वह भी उठ खड़ी हुईं । उनके हाथ में बाँस की बिजनी थी । गर्मी के मारे सारे बदन में फुंसियाँ निकल आई थीं । बिजनी के बेंट से पीठ खुजलाती हुई वह भी चार कदम आगे आईं ।

बड़ी मामी ने रत्ती के हाथ से गठरी ले ली और कहा—नानी को नहीं पहचाना ?

बृद्धा के पैरों पर धब से पड़कर उसने प्रणाम किया । नानी रो पड़ी—भूल गए हमें बेटा ?

पीतल का बहुत बड़ा कलगइयाँ* लोटा रखा था। उसी चौकी से टिकाकर बाँस की सुन्दर फराठी (फट्टी से तैयार की हुई छड़) रखी थी।

नाना के सामने अर्धचन्द्राकार बालपरिषद् बैठी थी। वह अनुशासक और प्रवक्ता की तरह परिषद् को कुछ समझा रहे थे।

उनकी देहकान्ति गौर-श्याम थी। चेहरा गोल था। चौड़े कंधे। तना हुआ सीना। लंबी-लंबी बाँह। वैसी विशाल काया शुभंकरपुर में कहाँ किसी की थी? बाल दाढ़ी-मूछ सब सफेद हो चुके थे। भौंह और कान तक के बाल सफेदी पकड़ चुके थे। दीप्त ललाट, छोटी-छोटी आँखें और कान बहुत भले लगते थे। नाक नुकीली नहीं थी। होठ न पतले थे न मोटे। गले में स्फटिककी माला थी। पीला और बारीक यज्ञोपवीत बाएँ कंधे से वक्षस्थल के बीच और वहाँ से दाहिनी ओर पेट और कमर की तरफ लटक रहा था। दाहिने हाथ की अनामिका में चाँदी की पवित्री थी। वह साफ धोती पहने हुए थे। पास में अँगोछा रखा था।

रतिनाथ ने दोनों पैर छूकर प्रणाम किया। नाना ने माथा और पाठ पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिए—आयुरानन्दवोर्द्धिरस्तु आयु और आनन्द की बढ़ती हो)

रत्ती प्रणाम करके एक ओर बैठ गया तो नाना बोले—क्यों रतिनाथ, मैं समझता था कि जब तक ओम्मा (जयनाथ) जियेंगे तब तक तुम नहीं आओगे और अब इन आँखों से तुम्हें देख नहीं पाऊँगा। खैर, आ गए।

रत्ती गुम ही रहा।

* भागलपुर से पूरब कहल गाँव बहुत पुरानी एक मंडी है। मुगलों और नवाबों के युग में कहल गाँव मशहूर कसबा था। वहाँ के ठठेरी पीतल के वर्तन बनाने में बेजोड़ थे। यही कहल गउआँ लोटा अब कलगइयाँ कहलाता है यद्यपि बनता है वह भागलपुर में।

नाना ने फिर घर का हाल और पढ़ाई-वढ़ाई के बारे में पूछा । रतिनाथ संक्षेप में उत्तर देता गया । अंत में उन दर्जनों लड़कों का नाम और रिश्ता उन्होंने अपने दौहित्र को बताया—यह हिमकर हैं । यह श्रीकर, वह क्षेमकर, वह शंकर, वह दिनकर, यह सुधाकर, वह रहा मधुकर, पद्मनाभ, रेवतीरमण, इन्द्रकान्त, गोपीकान्त, जयकान्त, श्रीनाथ, शिलानाथ, एकनाथ, लक्ष्मीनाथ, जटाधर, श्रीधर, गंगाधर, धरणीधर.....यह सब तुम्हारे ममेरे भाई होंगे । और भी हैं । नाना भोंक में आ गये थे । पच्चीस-तीस नाम बता गये । रतिनाथ लद गया ।

थोड़ी देर वहाँ बैठकर वह टहलने के लिये निकला तो कई और समययस्क साथ हो लिए ।

रत्ती का यह ननिहाल, मानिकपुर जोगियाड़ा स्टेशन से एक कोस पच्छिम पड़ता था । पूछ-पूछकर वह पहुँचा था । सड़क कच्ची थी । और, मानिकपुर तो बड़ा ही प्रसिद्ध गाँव है । पाठकों की खानदान पास-पड़ोस के पच्चीस कोस देहात में मशहूर था । ये लोग कुलीनता की दृष्टि से निम्न कोटि के ब्राह्मण थे । आचार-विचार, शील-स्वभाव, ठाट-बाट, धन-दौलत—यह सब प्रमाणित करता था कि उनमें वैशाली के लिच्छवि और मिथिला के विदेह इन दोनों गणों का रक्त मिश्रित है । यह भी क्या कोई रहस्य है कि इन पाठकों का सम्पर्क एक ओर दरिद्र मैथिलों से है तो दूसरी ओर धनाढ्य भूमिहारों से भी । इनका मालिक कोई दूसरा जमींदार नहीं है । अब भी चालीस सौ बीघे का इतना बड़ा रकबा पाठक लोगों की खास अपनी जायदाद है । आस-पास के कई गाँवों की जमींदारियों में वे पट्टीदार हैं । इनके मोतिया और भी कई जगह हैं । मगर यहाँ मानिकपुर में पाठकों के छोटे-बड़े वायन परिवार हैं । इस गाँव के बाकी ब्राह्मण, जो पाठक नहीं हैं, भी इन्हीं लोगों के भांजे, दौहित्र या उनकी औलाद है । ब्राह्मणों की कुल आबादी सत्रह सौ पचहत्तर है परन्तु सभी की धमनियाँ में एक ही रक्त प्रवाहित है ।

पाठककुल एक जटायु वटवृक्ष है जिसके दसियों धड़ और पचीसों शाखाएँ होती हैं। फिर उन शाखाओं के पचासों डालें, सैकड़ों डालियाँ एवं हजारों टहनियाँ। बड़े-बूढ़ों के श्राद्ध में, लड़कों के मूँडन-छेदन और उपनयन में पाठकों के यहाँ जब ज्ञातिभोज—कुलभोज होता है तो वह दृश्य देखकर अवश्य ही आप मुग्ध रह जाएँगे। उस समय आपस का सारा वैमनस्य, व्यक्तिगत राग-द्वेष से अंकुरित छोटे मोटे झगड़े—सब भूल जाते हैं वे। पंक्तिबद्ध होकर बैठते हैं और दो-दो घंटे तीन-तीन घंटे तक वह महाभोज चलता रहता है। पाठकों की परम्परागत अनुश्रुतियाँ, वीरता के आख्यान इतने अधिक हैं कि एक पोथा बन जायगा।

माँ मरी थी तो रतिनाथ नानी के पास रहने लगा था। साल भर रहा होगा कि एक ऐसी बात हो गई जिससे जयनाथ क्रुद्ध होकर लड़के को ले आए। तब से कभी रत्ती को बाप ने मानिकपुर नहीं आने दिया था। इस बार साहस करके वह स्वयं ननिहाल आया हुआ था।

नानी एक बड़े हो भद्र और कुलीन ब्राह्मण की सन्तान थी—माँ-बाप की तीसरी बेटी। बचपन में ही उसके माँ-बाप मर गए। चाचा ने तीन सौ में बेचारी को पाठकों के कुल में बेच दिया। अभाव-अभियोग के बीच पनपने वाली इस स्त्री का स्वभाव ऐसा उदार और विनीत होगा, किसे पता था? जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ा होगा संत और सनकी स्वभाव के पति मिले। तिसपर इतने बड़े परिवार की जिम्मेवारी! नानी ने अपने माँ-बाप और नइहर के नाम पर कभी धब्बा नहीं लगाने दिया। कम से कम पहना, कम से कम खाया-पिया। अधिक से अधिक बर्दाश्त किया, अधिक से अधिक सुना। अपने को पति-कुल की गतिविधि में, क्रिया-कलाप में इस भाँति खपा दिया कि आज सारा मानिकपुर शशिधर (मामा) की माँ का नाम लेकर ही सुबह-सुबह आँख खोलता है। नानी पुण्यश्लोक है, प्रातःस्मरणीय है।

पंच कन्या के बाद इस नर्मदा का नाम कोई कवि जोड़ दे तो अनर्गल नहीं होगा ।

मानिकपुर और पाठकों का राज । ननिहाल में रतिनाथ का मन ऐसा रमा कि पैंतीस रोज रह गया । संसार ऐसा स्वर्गीय है, इतना मनोरम है—रत्ती ने इस बात की कल्पना तक नहीं की थी । मोतिहारी के विद्यालय में पंडित जी संसार की तुलना मछली के तले टुकड़े से करते थे । कोई चाहेगा कि काँटे न हों, मछली ही मछली हो । सो कैसे होगा ? मुख को दुख से बिल्कुल अछूता रहकर भोगा नहीं जा सकता । रतिनाथ सोचता था, नहीं, संसार उजाड़ है । इसमें दुख ही दुख है । परन्तु ननिहाल की दुनिया से वह इतना प्रभावित हुआ कि सारा ब्रह्मांड उसे एक विराट् रसगुल्ला जैसा दीखने लगा ।

उस बार आमों की फसल खूब तो नहीं, मगर आठ आना ज़रूर हुई थी । नाना को पचास बीघों का बाग था । कलमी ही कलमी आमों का । बंबई, मालदह, किसुनभोग, कलकतिया, फजली, दड़मी, जर्दालू साहपसिन (शाहपसन्द), सुकुल, सिपिया, कपुरिया, दुर्गालाल का केरवा, बथुआ, राढ़ी भदई, मोहनठाकुर की भदई । मालदह आमों का राजा है । बनारस की तरफ यही लँगड़ा कहलाता है । बंबई सबसे पहले पकने लगता है । मालदह, पतला छिलका मामूली गुठली और अपने विशिष्ट स्वाद के लिए मशहूर है । बंबई का छिलका मोटा होता है मगर मिठास गजब की होती है उसमें । किसुनभोग दुलरुआ ठहरा, जरा सी असावधानी से उसमें पीलू पड़ जाते हैं । गूदा कड़ा औ काफी रहता है उसमें । शकल बिल्कुल गोल । कलकतिया गरीबों और साधारण जनता का प्रिय ठहरा । खूब फलता है और साल-साल । भादों तक टिकता है । माकूल मिठास और भरपूर गूदा । सुलभ और सस्ता । उसका नाम ही गरीबनेवाज रख दिया है लोगों ने । फजली का नम्बर किसी की राय में तीसरा और किसी की राय में चौथा है । शकल के ख्याल से इसका स्थान दूसरा समझना चाहिये । प्रथम स्थान

दुर्गालाल के केरवा को प्राप्त है। दुर्गालाल का केरवा दो-दो सेर तक का देखा गया है परन्तु स्वाद में वह असाधारण नहीं होता। दड़मी, जर्दालू और साहपसिन यह तीनों सगे हैं। आकार में जर्दालू बड़ा और अंदर से पीला होता है। सुकुल और सिपिया की आम के शौकीनों में काफी इज्जत है। सुकुल की गुठली धागेदार या सनवाली होती है। घुला हुआ सुकुल चूसने की चीज़ है, दाँतों से छोलकर खाने की नहीं। सिपिया की शकल सीपी की तरह और स्वाद मनोरम होता है। कपुरिया और सिपिया में केवल स्वाद का भेद है, आकार का नहीं। कपुरिया का स्वाद और गंध ठीक कपूरी मालूम होगा। बथुआ आसिन तक चलता है, स्वाद में साधारण। राढ़ी भदई अपने पतले छिलके और सुरभित माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है। उसकी मौसिम आधा सावन और भादो है। मोहर ठाकुर की भदई छोटी और नुकीली होती है। राढ़ी का छिलका पीला और गूदा थोड़ा लाल होता है.....

कलमी आमों का यह परिज्ञान रत्ती को नाना की कृपा से हुआ था। बाग में मचान पर बैठे हुए नाना ने एकबार कहा था—अब इन बातों का शौक लोगों में रहा ही नहीं। देखो न, इतना बड़ा बाग है तो क्या आज का है? तीन पुरखों की तपस्या का फल है। इसमें कितने ही पेड़ अब बूढ़े और रोगी हो गये हैं, साल-साल आधी तूफान में दो-एक पेड़ जड़-मूल से उखड़कर धराशायी हो जाते हैं परन्तु उनकी जगह नये कलम रोपने की चेष्टा कोई नहीं कर रहा। लड़के अहदी हो गए हैं। किसीकी कोई सुनता नहीं।

पुराने पेड़ों की जगह में नये थाले* पड़े अवश्य थे परन्तु उनकी

*संस्कृत में इसके लिए हम 'आलवाल' शब्द पाते हैं। उत्तर बिहार में यह थाला है। खाद-पानी के टिकाव के वास्ते पहले बड़े थाल की शकल में जगह तैयार करते हैं फिर उसके बीच में कलमी पौधा रोपा जाता है।

संख्या कम ही थी। रुद्रधर पाठक को इतने से भला क्या संतोष होता ?

कलमी आमों के इस बाग को छोड़ दें तो वहाँ बीजू आमों का एक दूसरा बाग भी था। बीजू आमों का बागीचा 'गाल्छी' कहलाता है। स्वाद के ख्याल से लोग कलमी आम पसंद करते हैं, फायदे के ख्याल से बीजू। बीजू का दूसरा नाम शरही भी है।

गाल्छी अब उजड़ रही थी। लकड़ी के अभाव में बड़े बड़े गाल्छ कट रहे थे। डेढ़ डेढ़ सौ वर्ष की उम्र के विशालकाय वृक्षों के आम रत्ती को यहीं मिले थे। ये उसकी धिवही के परदादा थे। रूप और गुण के अनुसार आमों के अलग-अलग नाम होते हैं। वहाँ सौ पेड़ बच रहे थे, सब के नाम याद रखना असंभव है। कुछ नाम अब तक रतिनाथ को याद हैं—केरवा परोड़िया बुनका करिअम्मा धुमनाही लडुब्बा केरवी लडुब्बी धिवही रोहिणिया वेलहा चक्रपाणिभोग रतुठिया (लाल होठों-वाली) कठमिया कोनैला तिनरंगा कपुरिया मधुरिया सिनुरिया पहुन-पदौना अमतहा सनहा भेमहा तमहा चफेलवा बडालेट.....वेलहा चक्रपाणिभोग और बडालेट करोड़ा की ताद'द में फरते और आँधी-तूफान का मुकाबला करते झड़ते झुड़ते पकने की मौसिम तक लाखों की तादाद में बचे रहते थे। वेल जैसे स्वाद के कारण वेलहा 'वेलहा' था। शकल में छोटा। चक्रपाणि भोग का छिलका बेहद मोटा और रस गाढ़ा था। मिठास उसमें खूब थी। बडालेट बड़ा रसीला ठहरा। शकल-सूरत में पहुनपदौना अद्वितीय था मगर चूसने के लिए मुँह लगाते ही आपकी नाक-भों टेढ़ी हो जाती, जीभ विरस हो जाती और रोम-रोम सिहर उठता। हास-परिहास एवं छुकाने की नोयत से मन चले नौजवान यह आम पाहुनों को थमा दिया करते—पहुना, यह कपुरिया आम है; ऐसा स्वादिष्ट आम आपका कहाँ मिलेगा ? उल्लसित होकर पाहुन महानुभाव जब उसमें मुँह लगाते तो हे राम ! बेचारा का

पूरा कौर भात खाने देता था। चुमकारता था, पुचकारता था। और, मैं तुम्हारी माँ हूँ उमानाथ ! क्या मैं कुन्ती से भी बदतर हूँ ?

अवश्य तू कुतिया से भी गई गुजरी है—चाची के अन्तस्तल से आवाज आई—तू जीने योग्य नहीं है। तेरे कलेजे में जितनी सुइयाँ चुभोई जायँ उतना अच्छा। सिसककर तू जितना ही रोएगी मेरा कलेजा उतना ही ठंडा होगा। चुड़ैल, तेरा सत्यानाथ हो। कुहर-कुहरकर मरे तू। तेरे अंग गलकर गिरे.....

कि एकाएक उसकी आँखों के आगे किसी किशोरी की सौम्य संयत प्रतिमा कहीं से अलक्षित ही आकर खड़ी हो गई। चाची का रोम-रोम सिहर उठा...यह उसकी कल्पना की पुत्रवधू थी। गदगद होकर चाची ने आँखें मूँद लीं। उसे भान हुआ, पतोहू नजदीक आई है और अपनी तिनपट्टिया साड़ी के आँचल से आँसू पोछ रही है। आह ! कितना शीतल स्पर्श है लाह की चूड़ियों और कंगन वाले इन मृदु-मासल हाँथों का ! ओह !.. अपनी नई नवेली पुत्रवधू का भला कौन सा नाम मैं रखूँगी ? पद्मसुन्दरी ? जयमुखी ? चन्द्रमुखी ? नहीं, पद्मसुन्दरी ही ठीक रहेगा...

कोने में से निकलकर एक चुहिया घर में स्वैर विहार करने जा रही थी। उसन चाची का ध्यान आकृष्ट किया। किसी घरेलू दुर्घटना में बेचारी की दुम थोड़ी कट गई थी। बेहोश हालत में देखकर चाची ने जरा 'अमृतधारा' लगा दी थी। फिर क्या था ? चार दिन में वह चंगी हो गई और पहले के माफिक उछलने-कूदने लगी। वह इतनी ढीठ बन गई थी कि चाची के पैर हाथ मुँह सिर सूँघ जातं। और चाची उसकी इस धृष्टता को उल्लसित होकर स्मितमुखी होकर बर्दाश्त करतीं। आज उसे देखते ही उन्होंने विचारा—मनुष्य होकर जन्म लेना अच्छा नहीं है। हे भगवान् ! अगले जन्म भले ही मैं चुहिया होऊँ भले ही नेवला मगर चेतनामय इस मानव समाज में फिर कभी न पैदा होऊँ। ओह, जो औरतें किसी विषाद के कारण

कुएँ में कूदकर या गले में फँदा डालकर अपने प्राणा का अन्त कर लेती हैं अवश्य ही पुनः इस मानवयोनि में उनका जीव नहीं आता... तो क्या मैं वैसा नहीं कर सकती हूँ ! कुआँ में कूदना और कूदकर जान देना आसान नहीं है । लोग मानते नहीं, निकाल डालते हैं । हाँ, घर में फँदा लगाकर भूल जाने से ठीक रहेगा । जिस किसी के हाथ पड़ूँगी, निष्प्राण निश्चेष्ट निष्पंद शव के रूप में ही; जीवित नहीं ।

तब फिर उमानाथ का ख्याल आया । विचार जब उड़ते-उड़ते आसमान को छू लेता है अवश्य ही उस स्थिति में वह जोर का पलटा खाता है । हिचकी लेकर एक बार सिहर उठीं । उन्होंने सोचा—विधवा होकर मैं गर्भवती हुई और आठ मास का बच्चा कोख से निकल-वाया । चमाइन उसे जंगल झाड़ी में फेंक आई ! ऐसी यशस्वनी माता हूँ मैं ! और, अब गले में फँदा लगाकर मरूँगी तो बेचारा (उमानाथ) सुयश का ऐसा भारी पहाड़ कैसे संभाल सकेगा ? ना, माँ को लेकर जितना यश उसे अब तक मिला है वही पर्याप्त है । फाँसी लगाकर, गौरी, स्वयं तो तू भवबन्धन से छुटकारा पा लेगी लेकिन उस अभाग्य का क्या होगा ?

परन्तु जीवन की एक मात्र आशा—पुत्र जब इस प्रकार विमुख हो रहा है तब किसके बूते वह अपने दिन काटेगी ? अपमान या आघात स्वजन की ओर से जब होता है तो उसकी असह्यता कई गुना अधिक होती है ।

और समाज में कैसे विषधर छिपे पड़े हैं ! जाने किसने उमानाथ के कान भरे थे ? चाची की यह जरा सी खुशहाली जाने किसे चुभ रही थी ?

चर्खा और तकली कातते कातते चाची के हाथ में घंटे पड़ गए थे । सारा गाँव जानता था कि कितनी कड़ो मिहनत वह करती थी । आठ घंटा, दस घंटा, आठ घंटा दस घंटा ! व्रत का दिन हो उपवास का ।

पर्व का हो चाहे त्यौहार का। चाची का यह यज्ञ कभी समाप्त नहीं होने वाला था। बदले में वह पाती क्या थी? बीस-पच्चीस रुपये मासिक। कभी यह आमदनी तीस तक पहुँच जाती थी। अपने खाने में तो बहुत ही कम खर्च करती, दस से अधिक कभी नहीं। बाकी पैसे जमा रहते या घर के किसी काम में लगते। दस-पाँच उधार उससे कौन नहीं ले गया होगा? कभी चाची ने 'ना' नहीं किया। सास-ससुर बाप और पति की वर्षों में पाँच-सात ब्राह्मणों को बराबर वह खिलाती आई थी। घर छुवाने के साल-साल खट्ट चाहिये, डोरी चाहिए। मजदूर चाहिए। एक दिन दो दिन देकर अतिथि-अभ्यागत आ धमकते, दो मुट्ठी चावल का भात खिलाये बिना चाची स्वयं कैसे दाना-पानी मुँह में डालती? पर्व-त्यौहार साल में दसों पड़ते हैं, उन दिनों कुछ न करो तो देवता नाराज हो जाते हैं और लक्ष्मी चिढ़ जाती है...यह सब आखिर कहाँ से होता था?

उमानाथ ने इतना भी नहीं सोचा कि शादी में जो चार सौ लगे हैं और सौ रुपया यह जो और जमा है सो यह कहाँ से आया? तीन सौ उसकी कमाई ठीक है। मगर बाकी दो सौ कहाँ से आया? यह सब ओछे स्वभाव वाले उस नौ जवान ने कुछ भी नहीं सोचा। बस रामपुर वाली चाची की चुगलखोरी पर ही अपने सम्पूर्ण विश्वास को उसने टिका दिया। माँ के प्रति तिलशः पुंजीभूत अश्रद्धा को प्रगट करने का क्या कोई दूसरा रास्ता नहीं था?

चाची ने अपनी दृष्टि से भी सोचा और उमानाथ की दृष्टि से भी। फिर भी इस प्रकार तिरस्कृत जीवन की चरितार्थता उसकी समझ में नहीं आई। कौन सी भावना है जिसे वह जीवन की सार्थकता के प्रमाण में पेश करे?

अग्रहन में उमानाथ गौना तो करेगा ही। चाची ने निश्चय किया, पतोहू का मुँह देखकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेनी चाहिये। फिर वही बात? नहीं, वह बात नहीं। जीवनलीला क

समाप्त करने में पल भर भी लग सकता है, पहर भर भी। मास, छै मास, साल भर भी लग सकता है। अलक्षित रूप में अपने को बीमार कर लेना, दवा-दारू नहीं करवाना और लगातार कुपथ्य और असंयम करते चले जाना...इस तरह कोई मरता है तो घर वालों की बदनामी नहीं होती। और यहाँ तो टलती बला को जानकर कोई भी 'हाय, हाय' नहीं करेगा !

इस निर्णय से चाची की आँखें चमक उठीं और वह बैठी। हाथ पर टुड्डी टेककर उसने देखा—लाश तुलसी-चउरे के नजदीक पड़ी है। मुँह उत्तर की ओर है। रतिनाथ निकट ही बैठा है। उसकी आँखों से आँसू की धागा अविराम बह रही है.....वहाँ और कोई नहीं है।

रतिनाथ ?

हाँ, रतिनाथ ही अपने हाथ से मेरा अंतिम संस्कार करेगा। वह मेरा मानस पुत्र है...चाची का चिन्तनचक्र चलने लगा...रत्ती ने कुछ ही दिन पहले कहा था—चाची, पता नहीं माँ कैसी हुआ करती है मगर मेरे लिए तो तुम्हीं माँ हो। हो न चाची ?

और तब अपने उच्छ्वसित आवेश को छिपाने के लिए चाची ने उसके गाल पर हलकी सी एक चपत जमा दी थी—दुत् पगला ! अप्रतिभ आँखों से लड़के ने चाची की आँखों में झाँका। इनमें छलकते वात्सल्य का तरल रूप पाकर रतिनाथ का चेहरा खिल उठा...उस समय तकली कात रही थी। डेढ़ सौ नम्बर का महीन सूत। अपने ध्यान को फिर से उसने एकाग्र कर लिया था। किन्तु वैशाख शुक्ल दशमी की अँजोरिया रात क्या कम आकर्षक होती है ? रतिनाथ ऊपर निगाह किए गगन विहारी चन्द्रमा की ओर अपने को टिकाए हुए था। जहाँ तकली की कटोरी थी वहीं उसके सिर की छाया पड़ती थी। बस, बीत आधी बीत का फासला हो तो हो। छाया में चाची ने देखा, ऊपर की ओर गर्दन को तिछी करके रत्ती ने दाहिने हाथ की

तर्जना अँगुली में चोटी के लम्बे बालों को लपेट लिया है । थोड़ी देर बाद चोटी के बालों से अँगुली छुड़ा ली और उसे इस भाँति हिलाने लगा मानो शून्य में कुछ लिख रहा हो । अन्त में उसी अँगुली से उसने अपनी गर्दन को मानो रेतना शुरू किया । फिर एकाएक पूछ बैठा—क्यों चाची, मुझे कोई जान से मार दे तो तुम बहुत रोओगी ?

चाची ने उसे डाँट दिया—भाँग तो नहीं पी आये हो ?

वह भँप गया और अपनी सुजनी पर जाकर सोने के उपक्रम में लगा ।

रतिनाथ के हृदय की विशृंखलताओं का पता चाची को खूब था । रत्ती भी चाची को खूब पहचानता था ।

आज चाची ने भगवान् से प्रार्थना की कि उसका अन्तिम संस्कार रतिनाथ के हाथों ही हो । पुत्र को जब माँ पर इतनी घृणा है तो यह अप्रिय कार्य उसे न करना पड़े—यही एक मात्र कामना थी जिसने बार-बार उस दिन चाची से हाथ जुड़ाये ।

कालाजार और मलेरिया का शिकार बन जाना शुभंकरपुर वाले के लिए बड़ा आसान था । चाची को निश्चय था कि इस बार वह अपने को इस मोर्चे पर आगे कर देगी और फिर देखा जायगा ।

दिन ढल गया था मगर चाची ने खाना नहीं खाया ।

उमानाथ की ससुराल का सामान सहेज-सँभालकर एक ओर रख दिया । मन हुआ कि चर्खा तोड़कर फेंक दे मगर नहीं । इसने पिछले पाँच साल से जीवन का साथ दिया है, अब उमानाथ के कहने से वह उसको छोड़ बैठेगी ? ना, ऐसा नहीं हो सकता । उमानाथ चाहे चमारिन कहे चाहे जुलाहिन, चाची चर्खा नहीं छोड़ेगी ।

कि इतने में बादल गड़गड़ा उठे । चाची बाहर निकल आई घर से । देखा, पश्चिमाकाश काली घनघटा से छा गया है । उसे रतिनाथ याद आया । अभी रहता तो बाग की ओर दौड़ता । आँधी तूफान के

इस अवसर पर जो भी दस-पाँच आम्र होंगे सब गिर पड़ेंगे। फटे-फूटे कच्चे आमों का और क्या होगा ? अचार बनेगा। कसौंभी बनेगी। आमिल बनेगा। चटनी और कुच्चा। रतिनाथ के अभाव में टोल-पड़ोस के और लड़के क्या बैठे रहेंगे ?

रत्ती आजकल तरकुलवा में था। अब ननिहाल गया होगा या जानें वाला होगा।

दच्छिन वाला घर खड़के अभाव में चूने की सूचना पहली वारिश में ही दे चुका था। यह तीसरा साल था। इस बार यदि नया खड़ छप्पर पर नहीं पड़ेगा तो बरसात में समूचा मकान बैठ जायगा। चाची ने बड़े खेद के साथ उस घर की ओर देखा—रतिनाथ की माँ मर गई तभी से इस घर की शोभा चली गई। चूहे, भींगुर और नेवले रहते हैं अब। मगर इस साल उनके भी रहने लायक नहीं रह जाएगा...

जयनाथ को कई पत्र चाची दे चुकी थी कि इस बार बरसात में घर बैठ जायगा। खुद न आ सको तो रुपये ही भेज देना। यहाँ सब ठीक हो जाएगा। परन्तु किसी पत्र का उत्तर बड़हड़वा से नहीं आया। रतिनाथ मोतिहारी से आया तो बाप की इस लापरवाही पर भुँभला उठा। निष्फल भुँभलाहट उपेक्षा की भूमिका होती है। पैसे तो बेचारे के हाथ थे नहीं कि छुवाने का कोई प्रबन्ध करता। चाची ने कहा था—बेटा, अपने हाथ से बाप को चार आखर लिख दो शायद इससे उनकी नींद टूटे। रतिनाथ को यह बात जँची नहीं।

—२६—

अग्रहन में नहीं, माघ में उमानाथ कलकत्ते से आया और महनौली से गौना करा लाया।

रतिनाथ की चाची

चाची चौमासा (बरसात) भर मलेरिया खेलती रही । बेहद कमजोर थी । परन्तु खूब उत्साह से उसने पतोहू का स्वागत किया । लड़की सचमुच ही स्वस्थ और सुन्दर थी ।

गहना के नाम पर माँ-बाप ने उसे कुछ नहीं दिया था । नन्द भा दरिद्र नहीं था परन्तु उसके चार लड़कियाँ थीं । खेती-गृहस्थी मामूली ढंग की ही थी । दो लड़के थे, दो बहिन, साल भर हड्डितोड़ मिहनत करने के बाद कहीं घर का पूरा खर्चा जुटा पाता था । पाल-पोस कर चौदह साल की लड़की को किसी की 'गृहलक्ष्मी' के लायक बना देना ही क्या कुछ कम था ?

इस अवसर पर उमानाथ ने प्रतिभामा को भी बुलवा लिया था । पति स्वयं ही उसे पहुँचा गया था ।

रतिनाथ भी मौजूद था । पिछली गर्मियों में जब मोतिहारी से वह गाँव आया तब से लौटकर कहाँ वह दुबारा मोतिहारी गया ? बात यह हुई कि नानी ने बड़ा ही आग्रह किया—कि दरभंगा के विद्यालय में ही पढ़ो, सीधा-सामान या और जो भी कुछ लगेगा तुम्हारे मामा देने को तैयार हैं । नानी का यह मधुर आग्रह रत्ती टाल नहीं सका । दरभङ्गा की महाराजी पाठशाला (रमेश्वरलता संस्कृत विद्यालय) में वह भर्ती हो गया । पढ़ाई अच्छी थी, व्याकरण-मध्यमा का कोर्स उसका पूरा हो ही चुका था । दस-बारह साथी और मिले । छोटी छुट्टियों में ननिहाल चला जाता । कभी-कभी चाची के पास भी ।

ताराचरण की माँ, रामपुर वाली चाची, शकुन्तला और चाची—सब की राय से दुलहिन का नाम पड़ा कमलमुखी बहुरिया । सास ने मधुबनी से पैजनी मँगवा दी कि कमलमुखी ताल बाँधकर चलेगी । मगर वह ठहरी ठेठ किसान की बेटी, खेत में राख डाल आना, गोइठा पाथना, तालाब और कुँए से पानी भर लाना, मौका-बेमौका गाय-बैल चरा लाना—यही सब जानती थी । भद्र कुलबधुओं

की चाल उसे अभी सीखना था। कमलमुखी के सम्बन्ध में शुभंकर-पुर की औरतों का कहना था कि खेतिहार की बेटी है, मोटा-भोटा खाना दो और कसकर काम लो।

उमानाथ महीना भर की छुट्टी ले आए थे। इतने दिन काफी थे। सिखा पढ़ाकर कमलमुखी को शेर बना गए।

आंगन का क्या कहना? जहाँ पहले चाची अकेले उदासी के तराने सुना करती वहीं कई प्राणी अब और आ गए थे। कमलमुखी थी। प्रतिभामा थी। उसके दो बच्चे थे। बीच-बीच में रतिनाथ भी आ जाता।

चाची ने बड़ी कोशिश की, मन को इनमें उलझाए। मगर उमानाथ का रूढ़ व्यवहार उसे दिन-दिन असह्य लग रहा था। अपना हृदय उसने पतोहू के लिए खोल दिया, प्रतिभामा से अधिक वह उसे ही मानने लगी। परन्तु आखिर खरबूजे को देखकर खरबूजे ने रङ्ग पकड़ ही लिया। कमलमुखी चाची की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने लगी। होली का त्यौहार आया। चाची का विचार था, कम से कम पाँच सेर आटा के लायक घी-गुड़ का प्रबन्ध करना चाहिए। कमलमुखी ने कहा—नहीं, इतना क्या होगा? ढाई सेर आटा काफी रहेगा। चाची बोली—तुम नहीं समझती हो, इस बार भगवान की कृपा है कि आंगन भरा पूरा है। तुम हो, प्रतिभामा है। बाल-बच्चे हैं। पूआ-पकवान कुछ ज्यादा ही बन जाएँगे तो क्या हर्ज है?

इस पर कमलमुखी ने ठुमुककर कहा—मना कर गए हैं।

चाची ने जोर दिया—तो क्या हुआ?

ऊँहूँ—पतोहू अचल होकर बोली। प्रतिभामा ने माँ को इशारा किया—क्यों झगड़ती हो? चाची इस घटना से द्रुट गई। उसने कुछ नहीं किया। प्रतिभामा ने त्यौहार की तैयारियाँ कीं। सास-पतोहू दोनों अलग-अलग कोपभवन में पड़ी हुई थीं। लगता था कि वही मेहमान हैं और प्रतिभामा ही गृहस्वामिनी है! उसके दोनों बच्चे

फुदक-फुदककर मालपूआ खा रहे थे । रामपुरी वाली चाची आई तो कमलमुखी की पीठ थपथपा गई ।

वैसी मनहूस होली चाची ने कभी नहीं बिताई ।

जिस बात का सन्देह था वह सच निकली । पतोहू का स्वभाव पति की ओर भुका हुआ था । किसी नवबधू का स्वभाव यदि पति की ओर अनुरक्त हो तो बुरा है ? नहीं । पति में अनुरक्त होना और बात है मगर बात-बात में सास-ससुर को चिकोटी काटना और ही बात है । उमानाथ माँ के प्रति अपनी घृणा का कुछ अंश पत्नी के भीतर उँडेल गया था । औरत अब उसके लिए 'स्वजन' थी और माँ थी पराई ।

चाची ने शिर भुकाकर परिवार की इस नई व्यवस्था को कबूल कर लिया । कमलमुखी को उन्होंने अपनी राह जाने दिया । प्रतिभामा तीन मास शुभंकरपुर रही, देवर बुला ले गया । स्वागत-सत्कार बहुत ही साधारण हुआ था बेचारी का । उमानाथ की प्रकृति में जिन गुणों का विकास हुआ था उनमें कृपणता का ही स्थान प्रथम था । कम से कम खाकर कम से कम पहन-ओढ़कर पैसे बटोरते चलो—सफल गृहस्थी का अपना यह मूल मंत्र वह कमलमुखी के भी कान में फूँक गया था । अपनी लड़की की विदाई में चाची ने अलग से पचीस रुपए खर्च किए । कमलमुखी ने उमानाथ को चुपचाप लिखवाया—घर के काम में तो कुछ देतीं नहीं मगर लड़की की विदाई के समय पचास जाने कहाँ से निकाले ? कितनी लंकी है तुम्हारी माँ की आँत !

प्रतिभामा चली गई तो चाची के लिए फिर एकान्तवास आरम्भ हुआ । कमलमुखी से वह कम ही बोलती थी । उसने भी अपनी सास से अधिक रामपुर वाली चाची का ही आदर-सत्कार शुरू किया । क्यों न हो ? वह आकर दुनियादारी के नये पैतरे बतलाया करतीं । टोल-पड़ोस की औरतों के गुन-औगुन ! यहाँ तक कि कमलमुखी को अपनी सास की वह कलकथा भी मालूम हो गई !

